दूसरी बार, २०००

मूल्य ॥।)

संवत १९८७,

संशोधित और

परिमार्जित संस्करण।

मुद्रक

जीतमल लूणिया—सस्ता-साहित्य-प्रेस, अजमेर।

प्रकाशक,

जीतमल लूणिया,

सस्ता-साहित्य-मण्डल, अजमेर।

समर्पण

श्रीमान् मेवाड़ाधिपति प्रताप के योग्य वंशधर, हिन्दू-सूर्य
महाराणा फतहसिंहजी की सेवा में:—

राजर्षे !

इस वीर-भूमि राजस्थान के अन्तस्तल मेवाड़ में मेरी अटूट भक्ति है, अनन्य श्रद्धा है; बचपन से ही मैं उसकी गुण-गाथा पर मुग्ध हूँ। अधिक क्या कहूँ, मेवाड़ मेरे हृदय का हरिद्वार, मेरे आत्मा की त्रिवेणी है।

मेरे लिए तो इतना ही बस था कि आप मेवाड़ के अधिवासी हैं, अधिपति हैं—उसी मेवाड़ के कि जिसने महाराणा प्रताप को जन्म दिया। पर, जब मुझे आपके जीवन का परिचय मिला तो मेरा हृदय श्रद्धा से उमड़ उठा।

मैं नहीं जानता कि आप कैसे नरेश हैं, पर, मैं मानता हूँ कि आप एक दिव्य पुरुष हैं। जो एक बार आपके चरित्र को सुनेगा, श्रद्धा और भक्ति से उसका मस्तक नत हुए बिना न रहेगा। ऐश्वर्य और चारित्र्य का ऐसा सुन्दर सम्मिश्रण तो सचमुच स्वर्ग के भी गौरव की चीज़ है।

स्वाभिमान और आत्म-गौरव से छक कर, निर्भय हो विचरण करने वाला, मध्यकालीन भारत का जीवन-प्राण, अब अलबेला क्षत्रियत्व आज यदि कहीं है तो केवल आप में। आप उस लुप्त-प्राय क्षात्र-तेज की जाज्वल्यमान अन्तिम राशि हैं।

ऐ भारत के गौरव-मन्दिर के अधिष्ठाता! आपने इस विपत्तकाल में भी हमारे तीर्थ की पवित्रता को नष्ट नहीं होने दिया. इसके लिए आप धन्य हैं! आप उन पुण्य चरित्र पूर्वजों के योग्य स्मारक हैं और आधुनिक भारतकी एक पूजनीय सर्वश्रेष्ठ विभूति हैं।

इस अकिञ्चन-हृदय की श्रद्धा को व्यक्त करने के लिए दाक्षिणात्य ऋषि की यह महार्घ-कृति अत्यन्त आदर के साथ आपके प्रतापी हाथों में समर्पित करने की आज्ञा चाहता हूँ और आशा करता हूँ कि इस पवित्र सम्पर्क से इस ग्रन्थ का गौरव और भी अधिक बढ़ जायगा।

चरणस्पर्शी धाकपन का दिलदारा—

क्षेमानन्द 'राहत'

प्रस्तावना

तामिल जाति की अन्तरात्मा और उसके संस्कार को ठीक तरह से समझने के लिए 'त्रिक्कुरल' का पढ़ना आवश्यक है। इतना ही नहीं, यदि कोई चाहे कि भारत के समस्त साहित्य का मुझे पूर्ण रूप से ज्ञान हो जाय तो त्रिक्कुरल को बिना पढ़े हुए उसका अभीष्ट सिद्ध नहीं हो सकती। त्रिक्कुरल का हिन्दी में भाषान्तर करके श्री क्षेमानन्दजी 'राहत' ने उत्तर भारत के लोगों को बहुत बड़ी सेवा की है। त्रिक्कुरल जाति के अछूत थे। किन्तु पुस्तक भर मे कहीं भी इस बात का जरा सा भी आभास नहीं मिलता कि ग्रन्थकार के मन में इस बात का कोई खयाल था। और तामिल कवियों ने भी अनेक स्थानों मे जहाँ जहाँ तिरुव-ल्लुवर की कविताएँ उद्धृत की हैं, या उनकी चर्चा की है, वहाँ भी इस बात का आभास नहीं मिलता कि वे अछूत थे। यह भारतीय संस्कृति का अनूठापन है कि त्रिक्कुरल के रचयिता की जाति की हीनता की ओर बिलकुल ध्यान नहीं दिया गया बल्कि उनके सम सामयिक और बाद के कवियों और दार्शनिकों ने भी उनके प्रति बड़ी श्रद्धा और भक्ति प्रकट की है।

त्रिकुरल विवेक, शुभ संस्कार और मानव प्रकृति के व्यावहा-रिक ज्ञान की खान है। इस अद्भुत ग्रन्थ की सब से बड़ी विशे-षता और चमत्कार यह है कि इसमें मानव चरित्र और उसकी दुर्बलताओं की तह तक विचार करके उच्च आध्यात्मिकता का प्रति-

प्रादन किया गया है। विचार के सचेत और संयत औदार्य्य के लिए त्रिक्कुरल का भाव एक ऐसा उदाहरण है कि जो बहुत काल तक अनुपम बना रहेगा। कला की दृष्टि से भी संसार के साहित्य में इसका स्थान ऊँचा है। क्योंकि, यह ध्वनि-काव्य है। उपमायें और दृष्टान्त बहुत ही समुचित रखे गये हैं और इनकी शैली व्यङ्ग पूर्ण है।

उत्तर भारतवासी देखेंगे कि इस पुस्तक में उत्तरी सभ्यता और संस्कृति का तामिल जाति से कितना घनिष्ट सम्बन्ध और तादात्म्य है। साथ ही त्रिक्कुरल दक्षिण की निजी विशेषता और सौन्दर्य को प्रकट करता है। मैं आशा करता हूँ—राहतजी के इस हिन्दी भाषान्तर के अध्ययन से कम से कम कुछ उत्साही उत्तर भारतीयों के हृदयों में, भारत की संस्कृति सम्बन्धी एकता के रचनात्मक विकास का महत्व जम जायगा, और इसी दृष्टि से वे तामिल भाषा तथा उसके साहित्य का अध्ययन करने लग जायेंगे जिससे वे त्रिक्कुरल और अन्य महान् तामिल ग्रन्थों को मूल भाषा में पढ़ सकें और उनके काव्य सौष्ठवों का रसास्वादन कर सकें कि जो अनुवाद में कभी आ ही नहीं सकता।

गान्धी-आश्रम,
तिरुचेंगोड़, मद्रास। | चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य

१)

भेजकर आप मण्डल के स्थाई ग्राहक बनें—

और

१—नरमेध !

२—दुखी दुनिया

३—शैतान की लकड़ी

४—हमारे जमाने की गुलामी

५—जब अंग्रेज आये

६—स्वाधीनता के सिद्धान्त

आदि क्रांतिकारी और सस्ती पुस्तकें

मण्डल से पौने मूल्य में लेकर पढ़ें !

मु०—[illegible]

विषय-सूची

५—विविध—

भूमिका

तामिल जाति

दक्षिण में, सागर के तट पर, भारतमाता के चरणों की पुजारिन के रूप में, अज्ञात काल से एक महान् जाति निवास कर रही है जो 'तामिल' जाति के नाम से प्रख्यात है। यह एक अत्यन्त प्राचीन जाति है; और उसकी सभ्यता संसार की प्राचीनतम सभ्यताओं के साथ खड़े होने का दावा करती है। उसका अपना स्वतन्त्र साहित्य है, जो मौलिकता तथा विशालता में विश्वविख्यात संस्कृत-साहित्य से किसी भाँति अपने को कम नहीं समझता। यह जाति बुद्धि-सम्पन्न रही है और आज भी इसका शिक्षित समुदाय मेधावी तथा अधिक बुद्धि-शाली होने का गर्व करता है।

इसमें सन्देह नहीं, नख से शिख तक सूफ़ियाना वज़अ की वेश-भूषा से सुसज्जित, तहज़ीब का दिलदादा 'हिन्दुस्तानी' जब किसी श्याम वर्ण के, तहमत बांधे, अँगोछा ओढ़े, नंगे सिर और नंगे पैर, तथा जूड़ा बांधे हुए मद्रासी भाई को देखता है, तब उसके मन में बहुत अधिक श्रद्धा का भाव जागृत नहीं होता। साधारणतः हमारे तामिल बन्धुओं का रहन-सहन और व्यवहार इतना सरल और आडम्बर रहित होता है और उनकी कुछ बातें इतनी विचित्र होती हैं कि साधारण यात्री को उनकी सभ्यता में कभी-कभी सन्देह हो उठता है। किन्तु नहीं, इस सरलता के भीतर एक

रहता है जिसमें उत्सव के दिन मूर्ति की स्थापना करके उसका जुलूस निकालते हैं। रथ में एक रस्सा बाँध दिया जाता है, जिसे सैकड़ों लोग मिल कर खींचते हैं। लोग टोलियाँ बना कर गाते हुए जाते हैं और कभी-कभी गाते-गाते मस्त जाते हैं। देवमूर्ति के सामने साष्टाङ्ग प्रणाम करते हैं और कोई कान पर हाथ रख कर उठते बैठते हैं। जब आरती होती है, तब नाम स्मरण करते हुए दोनों हाथों से अपने दोनों गालों को धीरे-धीरे थपथपाने लगते हैं।

'तामिल नाडु'—यद्यपि प्राकृतिक सौन्दर्य से परिप्लावित हो रहा है, पर 'अय्यङ्गार' जाति को छोड़ कर शारीरिक सौन्दर्य इन लोगों में बहुत कम देखने में आता है। शारीरिक शक्ति में यह अब भी लार्ड मैकाले के ज़माने के बंगालियों के भाई ही बने हुए हैं। छोटी जातियों में तो साहस और बल पाया जाता है, पर अपने को ऊँचा समझने वाली जातियों में बल और पौरुष की बड़ी कमी है। चावल इनका मुख्य आहार है और उसे ही यह 'अन्नम्' कहते हैं। गेहूँ का व्यवहार न होने के कारण अनेक प्रकार के व्यंजनों से अभी तक ये अपरिचित ही रहे, पर चावलों के ही भाँति-भाँति के व्यञ्जन बनाने में ये सुदक्ष हैं। पूरी को ये फलाहार के समान गिनते हैं और 'रसम्' इनका प्रिय पेय है, जो स्वादिष्ट और पाचक होता है। थाली में यह खाना पसन्द नहीं करते, केले के पत्ते पर भोजन करते हैं। इनके खाने का ढङ्ग विचित्र है।

तामिल बहिनें पर्दा नहीं करतीं और न मारवाड़ी-महिलाओं की तरह ऊपर से नीचे तक गहनों से लदी हुई रहना पसन्द करती हैं। हाथों में दो एक चूड़ियें, नाक और कान में हलके जवाहिरात से जड़े, थोड़े से आभूषण उनके लिए पर्याप्त हैं। वह नौ गज की रंगीन साड़ी पहिनती हैं। कच्छ लगाती हैं और सिर खुला रखती हैं जो बाकायदा बँधा रहता है और जूड़े में प्रायः फूल गुँथा रहता है। केवल विधवायें ही सिर को ढँकती हैं। उनके बाल काट दिये जाते हैं और सफेद साड़ी पहिनने को दी जाती है। बड़े घरानों की स्त्रियाँ भी प्रायः हाथ से ही घर का काम-

भावों की उच्चता और चरित्रों की सजीवता में वह कहीं-कहीं, वाल्मीकि और तुलसी से भी बढ़ी-चढ़ी बताई जाती है। माणिक्य वाचक कृत तिरुवाचक भी प्रसिद्ध ग्रन्थ है। पर तिरुवल्लुवर का कुरल अथवा त्रिक्कुरळ जिसके विचार पाठकों की भेंट किये जा रहे हैं, तामिल भाषा का सर्वोत्कृष्ट ग्रन्थ है। यह तामिल साहित्य का फूल है।

ग्रन्थकार का परिचय

कुरल तामिल भाषा का प्राचीन और अत्यन्त सम्मानित ग्रन्थ है। तामिल लोग इसे पंचम वेद तथा तामिल वेद के नाम से पुकारते हैं। इसके रचयिता तिरुवल्लुवर नाम के महात्मा हो गये हैं। ग्रन्थकार की जीवनी के सम्बन्ध में निश्चयात्मक-रूप से बहुत कम हाल लोगों को मालूम है। यहाँ तक कि इनका वास्तविक नाम क्या था यह भी निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। क्योंकि तिरुवल्लुवर शब्द के अर्थ होते हैं 'वल्लवा जाति का एक भक्त'। वल्लवा जाति की गणना मद्रास की अछूत जातियों में है।

तामिल जन-समाज में एक छन्द प्रचलित है जिससे प्रकट होता है कि तिरुवल्लुवर का जन्म पांड्य वंश की राजधानी मदुरा में हुआ था। परम्परा से ऐसी जन-श्रुति चली आती है कि तिरुवल्लुवर के पिता का नाम भगवन् था जो जाति के ब्राह्मण थे और माता आदि पैरिया अछूत जाति थी। इनकी माता का लालन-पोषण एक ब्राह्मण ने किया था और उसी ने भगवन् के साथ उन्हें ब्याह दिया। इस दम्पति के सात सन्तानें हुईं, चार कन्यायें और तीन पुत्र। तिरुवल्लुवर सब से छोटे थे। यह विचित्रता की बात है कि अकेले तिरुवल्लुवर ने ही नहीं, बल्कि इन सातों ही भाई बहनों ने कवितायें की हैं। इनकी एक बहिन औव्यार प्रतिभाशाली कवि हुई।

एक जनश्रुति से ज्ञात होता है कि इस ब्राह्मण पैरिया दम्पति ने किसी कारण-वश ऐसी प्रतिज्ञा की थी कि अब के जो सन्तान होगी उसे

था। इनका गार्हस्थ्य जीवन बड़ा ही आनन्द-पूर्ण रहा है। वासुकी मालूम नहीं अछूत जाति की थी या अन्य जाति की; पर तामिल लोगों में उसके चरित्र के सम्बन्ध में जो किम्वदन्तियाँ प्रचलित हैं, और जिनका वर्णन भक्त लोग बड़े प्रेम और गौरव के साथ करते हैं उनसे तो यह कहा जा सकता है कि वासुकी एक पूजनीय सच्ची आर्य देवी थी। आर्य-कल्पना ने आदर्श महिला के सम्बन्ध में जो ऊँची से ऊँची और पवित्रतम धारणा बनाई है, जहाँ अभिमानी से अभिमानी मनुष्य श्रद्धा और भक्ति, के साथ अपना सिर झुका देता है, वह उसकी अनन्य पति-भक्ति, उसका विश्वविजयी पातिव्रत्य है। देवी वासुकी में हम इसी गुण को पूर्ण तेज़ से चमकता हुआ पाते हैं। तिरुवल्लुवर के गार्हस्थ्य जीवन के सम्बन्ध में जो कथायें प्रचलित हैं, वे ज्यों की त्यों सच्ची हैं यह तो कौन कह सकता है? पर इसमें सन्देह नहीं कि इससे हमें तामिल लोगों की गार्हस्थ्य जीवन की धारणा का परिचय मिलता है।

कहा जाता है वासुकी अपने पति में इतनी अनुरक्त थीं कि उन्होंने अपने व्यक्तित्व को ही एकदम भुला दिया था। उनकी भावनाएँ, उनकी इच्छायें यहाँ तक कि उनकी बुद्धि भी उनके पति में ही लीन थी। पति की आज्ञा मानना ही उनका प्रधान धर्म था। विवाह करने से पूर्व तिरुवल्लुवर ने कुमार वासुकी की आज्ञापालन की परीक्षा भी ली थी। वासुकी से कीलों और लोहे के टुकड़ों को पकाने के लिए कहा गया और वासुकी ने बिना किसी हुज्जत के, बिना किसी तर्क-वितर्क के वैसा ही किया। तिरुवल्लुवर ने वासुकी के साथ विवाह कर लिया और जब तक वासुकी जीवित रहीं, उसी निष्ठा और अनन्य श्रद्धा के साथ पति की सेवा में रत रहीं। तिरुवल्लुवर के गार्हस्थ्य जीवन की प्रशंसा सुनकर एक सन्त उनके पास आये और पूछा कि विवाहित जीवन अच्छा है अथवा अविवाहित? तिरुवल्लुवर ने इस प्रश्न का सीधा उत्तर न देकर अपने पास कुछ दिन ठहर कर परिस्थिति का अध्ययन करने को कहा।

एक दिन सुबह को दोनों जने ठण्डा भात खा रहे थे जैसा कि गर्मी

देश होने के कारण मद्रास में चलन है। वासुकी उस समय कुँए से पानी खींच रही थी। तिरुवल्लुवर ने एकाएक चिल्लाकर 'ओह! भात कितना गर्म है, खाया नहीं जाता।' वासुकी यह सुनते ही घड़े और रस्सी को एक दम छोड़ कर दौड़ पडी और पंखा लेकर हवा करने लगी। वासुकी के हवा करते ही उस रातभर के, पानी में रक्खे हुए ठण्डे भात से गरम गरम भाफ़ निकली और उधर वह घड़ा जिसे वह अधखिंचा कुँए में छोड़ कर चली आई थी, वैसा का वैसा ही कुँए के अन्दर अधर में लटका रह गया। एक दूसरे दिन सूर्य के तेज प्रकाश में, तिरुवल्लुवर जब कपड़ा बुन रहे थे तब उन्होंने वेन को हाथ से गिरा दिया और उसे ढूँढने के लिये चिराग़ मँगाया। बेचारी वासुकी दिन में दिया जलाकर, आँखों के सामने, रोशनी में फर्श पर पड़े हुए वेन को ढूंढने चली। उसे इस बात के बेतुकेपन पर ध्यान देने की फुरसत ही कहाँ थी?

बस, तिरुवल्लुवर का उस संत को यही जवाब था। यदि स्त्री सुयोग्य और आज्ञाधारिणी हो तो सत्य की शोध में जीवन खपाने वाले विद्वानों और सूफ़ियों के लिए भी विवाहित जीवन वांच्छनीय और परमोपयोगी है। अन्यथा यही बेहतर है कि मनुष्य जीवन भर अकेला और अविवाहित रहे। स्त्री वास्तव में गृहस्थ-धर्म का जीवन-प्राण है। घर के छोटे से प्राङ्गण को स्त्री स्वर्ग बना सकती है और स्त्री ही उसे नरक का रूप दे सकती है। इसी ग्रन्थ में तिरुवल्लुवर ने कहा है "स्त्री यदि सुयोग्य है तो फिर ग़रीबी कैसी? और स्त्री यदि योग्य नहीं हो फिर अमीरी कहाँ है?" Frailty thy name is women – दुर्बलते, तेरा ही नाम स्त्री है, ढोल गँवार-शूद्र-पशु-नारी; स्त्रियश्चरित्र पुरुषस्य भाग्यं, देवो न जानाति कुतो मनुष्यः—इस प्रकार के भाव स्त्रियों के व्यवहार से दुःखित होकर प्रायः प्रत्येक भाषा के कवियों ने व्यक्त किये हैं। किन्तु तिरुवल्लुवर ने कहीं भी ऐसी बात नहीं कही। जहाँ तपोमूर्ति वासुकी प्रसन्न सलिला मन्दाकिनी की भाँति उनके जीवन-वन को हरा-भरा और कुसुमित कर रही हो, वहाँ इस प्रकार की भावना ही कैसे उठ सकती है? तिरुवल्लुवर ने तो जहाँ

कहा है, इसी ढङ्ग से कहा है कि जो स्त्री बिस्तर से उठते ही अपने पति की पूजा करती है, जल से भरे हुए बादल भी उसका कहना मानते हैं और यह शायद उनके अनुभव की बात थी।

वासुकी जब तक जीवित रही, बड़े आनन्द से उन्होंने गार्हस्थ्य जीवन व्यतीत किया और उसके मरने के बाद वे संसार त्याग कर विरक्त की भाँति रहने लगे। कहा जाता है कि जीवन की सहचरी के कभी न मिटने वाले वियोग के समय तिरुवल्लुवर के मुख से एक पद निकला था जिस का आशय यह है:—

"ऐ प्रिये! तू मेरे लिए स्वादिष्ट भोजन बनाती थी और तूने कभी मेरी आज्ञा की अवहेलना नहीं की! तू रात को मेरे पैर दबाती थी, मेरे सोजाने के बाद सोती थी और मेरे जागने से पहिले जाग उठती थी! ऐ सरले! सो तू क्या आज मुझे छोड़ कर जा रही है? हाय! अब इन आँखों में नींद कब आयेगी?"

यह एक तापस हृदय का रुदन है। सम्भव है, ऐसी स्त्री के वियोग पर भावुक-हृदय अधिक उद्वेग-पूर्ण, अधिक करुण क्रन्दन करना चाहे; पर यह एक घायल आत्मा का संयत चीत्कार है जिसे अनुभव ही कुछ अच्छी तरह समझ सकता है। हाँ, वासुकी यदि देवी थी तो तिरुवल्लुवर भी निस्सन्देह संत थे। वासुकी के जीवन-काल में तो वह उसके थे ही पर उसकी मृत्यु के बाद भी उसका स्थान उसका ही बना रहा।

कुछ विद्वानों को इसमें सन्देह है कि तिरुवल्लुवर का जन्म अछूत जाति में हुआ। उनका कहना है कि उस समय आज कल के king's Steward के समान 'वल्लुवन' नाम का एक पद था और 'तिरु' सम्मानार्थ उपसर्ग लगाने से तिरुवल्लुवर नाम बन गया है। यह एक कल्पना है जिसका कोई विशेष आधार अभी तक नहीं मिला। यह कल्पना शायद इसलिए की गई है कि तिरुवल्लुवर की 'अछूतपन' से रक्षा की जाय। किन्तु इससे और तो कुछ नहीं, केवल मन की अस्वस्थता और दुर्भावना ही प्रकट होती है। किसी महात्मा के महत्त्व की हमने तिल भर भी वृद्धि

नहीं होती कि वह किसी जाति विशेष में पैदा हुआ है। सुन्दर चरित्र और उच्च विचार आज तक किसी देश अथवा समुदाय विशेष की बपौती नहीं हुए हैं और न उन पर किसी का एकाधिपत्य कभी हो ही सकता है। सूर्य के प्रकाश की तरह ज्ञान और चारित्र्य भगवान की यह दो सुन्दरतम विभूतियाँ भी इस प्रकार के भेद-भाव को नहीं जानती। जो खुले दिल से उनके स्वागत के लिये तैयार होता है, बस उसी के प्राङ्गण में निर्द्वन्द्व और निस्सङ्कोचभाव से ये जाकर खेलने लगती हैं।

तिरुवल्लुवर का धर्म

तिरुवल्लुवर किस विशिष्ट सम्प्रदाय के अनुयायी थे, यह विषय बड़ा ही विवादग्रस्त है। शैव, वैष्णव, जैन और बौद्ध सभी उन्हे अपना बनाने की चेष्टा करते हैं। इन सम्प्रदायों की कुछ बातें इस ग्रन्थ में मिलती अवश्य हैं पर यह नहीं कहा जा सकता कि वह इनमें से किसी सम्प्रदाय के पूर्णतः अनुयायी थे। यदि एक मत के अनुकूल कुछ बातें मिलती हैं तो कुछ बातें ऐसी भी मिलती हैं जो उस मत को ग्राह्य नहीं हैं। मालूम होता है कि तिरुवल्लुवर एक उदार धर्म-निष्ठ पुरुष थे, जिन्होंने अपनी आत्मा को किसी-मतमतान्तर के बन्धन में नहीं पड़ने दिया बल्कि सच्चे रत्न-पारखी की भाँति जहाँ जो दिव्य रत्न मिला, उसे वहीं से ग्रहण कर अपने रत्न- भण्डार की अभिवृद्धि की। धर्म-पिपासु भ्रमर की भाँति उन्होंने इन मतों का रसास्वादन किया पर किसी पुष्प-विशेष में अपने को फँसने नहीं दिया बल्कि चतुरता के साथ सुन्दरता के साथ सुन्दर से सुन्दर फूल का सार ग्रहण कर उससे अपनी आत्मा को प्रफुल्लित, आनन्दित और विकसित किया और अन्त में अपने उस सार-भूत ज्ञान-समुच्चय को अत्यन्त ललित और काव्य-मय शब्दों में संसार को दान कर गये।

एक बात बड़ी मज़ेदार है। हिन्दू-धर्म के विभिन्न सम्प्रदायों की तरह ईसाई लोगों ने भी यह दावा पेश किया है कि तिरुवल्लुवर के शब्दों में ईसा के उपदेशों की प्रतिध्वनि है और एक जगह तो कुरल के

ईसाई अनुवादक महाशय, डा. पोप यहाँ तक कह उठे—"इसमें सन्देह नहीं कि ईसाई धर्म का उस पर सब से अधिक प्रभाव पड़ा था।" इन लोगों का ऐसा विचार है कि तिरुवल्लुवर की रचना इतनी उत्कृष्ट नहीं हो सकती थी यदि उन्होंने सेन्ट टामस से मयलापुर में ईसा के उपदेशों को न सुना होता। पर आश्चर्य तो यह है कि अभी यह सिद्ध होना बाकी है कि सेन्ट टामस और तिरुवल्लुवर का कभी साक्षात्कार भी हुआ था या नहीं। केवल ऐसा होने की सम्भावना की कल्पना करके ही ईसाई लेखकों ने इस प्रकार की बातें कही हैं और उनके ऐसा लिखने का कारण भी है, जो उनके लेखों से भी व्यक्त होता है। वह यह कि उनकी दृष्टि में ईसाई-धर्म ही सर्वोत्कृष्ट धर्म है और इतनी उच्चता और पवित्रता अन्यत्र कहीं मिल ही नहीं सकती। यह तो वे समझ ही कैसे सकते हैं कि भारत भी स्वतंत्र रूप से इतनी ऊँची कल्पनायें कर सकता है? पर यदि उनको यह मालूम हो जाय कि उनका प्यारा ईसाई-धर्म ही भारत के एक महान् धर्म की प्रेरणा और स्फूर्ति से पैदा हुआ है; और उसकी देशानुरूप बताई हुई नकल है तब तो शायद गर्वोक्ति मुँह की मुँह में ही विलीन हो जायगी।

ईसाई-धर्म उच्च है, इसमें सन्देह नहीं। ईसा के बालक-समान विशुद्ध और पवित्र हृदय से निकला हुआ 'पहाड़ पर का उपदेश' निस्सन्देह बड़ा ही उत्कृष्ट, हृदय को ऊँचा उठाने वाला और आत्मा की मधुर तंत्री को झंकृत कर अपूर्व आनन्द देने वाला है। उनके कहने का ढंग अपूर्व है, मौलिक है; पर वैसे ही भावों की मौलिकता का भी दावा नहीं किया जा सकता। जिन्होंने उपनिषदों और ईसा के उपदेशों का अध्ययन किया है, वे दोनों की समानता को देखकर चकित रह जाते हैं और यह तो सब मानते ही हैं कि उपनिषद् ईसा से बहुत पहिले के हैं। बौद्ध-धर्म और ईसाई धर्म की समानता पर तो खासी चर्चा हो ही रही है और यह भी स्पष्ट है कि बुद्ध की शिक्षा उपनिषद्-धर्म का नया रूप है।

प्रोफेसर मैक्समूलर अपने एक मित्र को लिखते हैं:—

"I fully sympathise with you and I think I can say of myslf that I have all my life worked in the same spirit that speaks from your letter, so much so that any of your friends could prove to me what they seem to have said to you namely, 'that christianity was but an inferior copy of a greater original. I should bow and accept the greater original. That there are startling coincidences between Buddhism and christianity, can not be denied and it must likewise be admitted that Buddhism existed atleast 400 years before christianity. I go even further and should feel extremly grateful if any body would point out to me the historical chanels through which Buddhism had influenced early christianity. I have been looking for such channels all my life but I have found none."—Maxmu'lers letter's on Buddhism.

इसका आशय यह है—'मै आपसे पूर्णत सहमत हूँ और अपने विषय में तो मैं कह सकता हूँ कि अपने जीवन भर मैंने उसी भावना से कार्य किया है कि जो आपके पत्र से व्यक्त होती है। यहाँ तक कि यदि आपके मित्रों में से कोई इस बात के प्रमाण दे सके जो कि मालूम होता है, उन्होंने आप से कहा है अर्थात् 'क्रिश्चियानिटी एक महान् मूल-धर्म की छोटी सी प्रतिलिपि मात्र है तो मैं उस महान् मूलधर्म को सिर झुका कर स्वीकार कर लूंगा। इससे तो इन्कार किया ही नहीं जा सकता कि बौद्ध-धर्म और ईसाई-धर्म में चौंका देने वाली समानता है और इसको भी स्वीकार ही करना पड़ेगा कि बौद्ध-धर्म क्रिश्चियानिटी से कम से कम ४०० वर्ष पूर्व मौजूद था। मैं तो यह भी कहता हूँ

कि मैं बहुत ही कृतज्ञ होऊँगा यदि कोई मुझे उन ऐतिहासिक स्रोतों का पता देगा कि जिनके द्वारा प्रारम्भिक क्रिश्चियानिटी पर बौद्ध-धर्म का प्रभाव पड़ा था। मैं जीवन भर इन स्रोतों की तलाश में रहा हूँ लेकिन अभी तक मुझे उनका पता नहीं मिला।"

बौद्ध-धर्म की प्रचार शक्ति बड़ी ज़बरदस्त थी। बौद्ध-भिक्षु संघ संसार के महान् संगठनों का एक प्रबल उदाहरण है, जिसमें राजकुमार और राजकुमारियाँ तक आजन्म ब्रह्मचर्यव्रत धारण कर बौध-धर्म के प्रचार के लिए अपने जीवन को अर्पित कर देते थे। अशोक की बहिन राजकुमारी सङ्घमित्रा ने सिंहलद्वीप में जाकर बौद्ध-धर्म की दीक्षा दी थी। बर्मा, आसाम चीन और जापान में तो बौद्ध-धर्म अब भी मौजूद है। पर पश्चिम में भी बौद्ध-भिक्षु अफ़गानिस्तान, फारस और अरब तक भारत के प्राचीन धर्म के इस नवीन संस्करण का शुभ्र उपदेश लेकर पहुँचे थे। तब कौन आश्चर्य है यदि बौद्ध-भिक्षुओं के द्वारा प्रतिपादित उदात्त और उच्च धर्म-तत्वों के बीजों को पैलस्टाइन की उर्वरा भूमि ने अपने उदर में स्थान दे, नवीन धर्म-बालक को पैदा किया हो। बहरहाल यह निर्विवाद है कि क्षमा और अहिंसा आदि उच्च तत्वों की शिक्षा के लिए तिरुलुवर को क्रिश्चियानिटी का मुँह ताकने की आवश्यकता न थी। उनका सुसंस्कृत सन्त-हृदय ही इन उच्च भावनाओं की स्फूर्ति के लिए उर्वर क्षेत्र था। फिर लाखों वर्ष की पुरानी, संसार की प्राचीन से प्राचीन और बड़ी से बड़ी संस्कृति उन्हें विरासत में मिली थी। जहाँ 'धृतिः क्षमा' और 'अहिंसा परमो-धर्मः' 'उपकारिषु यः साधुः, साधुत्वे तस्य को गुणः ? अपकारिषु यः साधु स साधुः सद्भिरुच्यते' आदि शिक्षाएँ भरी पड़ी हैं।

रनाकाल

ऊपर कहा गया है कि एलेला शिंगन नाम का एक व्यापारी सन्त तिरुलुवर का मित्र था। कहा जाता है कि यह शिंगन दूसरा नाम के चोल वंश के राजा का छठा वंशज था जो लगभग २०६० वर्ष पूर्व राज

करता था और सिंहलद्वीप के महावंश से मालूम होता है कि ईसा से १४० वर्ष पूर्व उसने सिंहलद्वीप पर चढ़ाई की, उसे विजय किया और वहाँ अपना राज्य स्थापित किया। इस शिङ्गन और उसके उक्त पूर्वज के बीच में पाँच पीढ़ियें आती हैं और प्रत्येक पीढ़ी ५० वर्ष की मानें तो हम इस निर्णय पर पहुँचते हैं कि पहिली शताब्दि के लगभग कुरल की रचना हुई होगी।

परम्परा से यह जन-श्रुति चली आती है कि कुरल अर्थात् तामिल वेद पहिले पहिल पांड्य राजा 'उग्रवेरु वजूदि' के राज्यकाल में मदुरा के कवि समाज में प्रकाश में आया। श्रीमान् एस. श्रीनिवास अय्यङ्गर ने उक्त राजा का राज्यारोहण काल १२५ ईसवी के लगभग सिद्ध किया है। इसके अतिरिक्त तामिल वेद के छठे प्रकरण का पाँचवाँ पद 'शिलप्प-धिकरन्' और 'मणिमेखलै' नामक दो तामिल ग्रन्थो में उद्धृत किया गया है और ये दोनों ग्रन्थ, कुछ विद्वानों का कहना है कि ईसा की दूसरी शताब्दि में लिखे गये हैं। किन्तु 'चेरन-चेन-कुहवन' नामक ग्रन्थ के विषय में लिखते हुए श्रीमान् एस.राघव अय्यङ्गर ने यह बतलाया है कि उपरोक्त दोनों पुस्तकें सम्भवतः पाँचवीं शताब्दि में लिखी गई हैं।

इन तमाम बातों का उल्लेख करके श्रीयुत वी. वी. एस. अय्यर इस निर्णय पर पहुँचे हैं कि पहली और तीसरी शताब्दि के मध्य में तिरु-वल्लुवर का जन्म हुआ। उक्त दो ग्रन्थ यदि पाँचवीं शताब्दि में बने हों तब भी इस निश्चय को कोई बाधा नहीं पहुँचती क्योंकि उद्धरण दो शताब्दि बाद भी दिया जा सकता है। इससे पाठक देखेंगे कि आज जो ग्रन्थ-रत्न वे देखने चले हैं, वह लगभग १४०० वर्ष पहिले का बना हुआ है और उसके रचयिता एक ऐसे विद्वान् सन्त हैं जिन्हें जैन, वैष्णव, शैव, बौद्ध और ईसाई सभी अपना बनाने के लिए लालायित हैं। किन्तु वे किसी के पाश में आबद्ध न होकर स्वतंत्र वायु-मण्डल में विचरण करते रहे और वहाँ से उन्होंने संसार को निर्लिप्त-निर्विकार रूप में अपना अमृत-मय उपदेश सुनाया है।

तामिल वेद में तिरुवल्लुवर ने धर्म, अर्थ और काम इन पुरुषार्थ-त्रय पर पृथक् २ तीन प्रकरणों में ऊँचे से ऊँचे विचार अत्यन्त सूक्ष्म और सरस रूप में व्यक्त किये हैं। श्रीयुत वी. वी. एस. अय्यर ने कहा है— "मलयपुर के इस अछूत जुलाहे ने आचार-धर्म की महत्ता और शक्ति का जो वर्णन किया है, उससे संसार के किसी धर्म-संस्थापक का उपदेश अधिक प्रभावयुक्त या शक्तिप्रद नहीं है; जो तत्व इसने बतलाये हैं, उनसे अधिक सूक्ष्म बात भीष्म या कौटिल्य, कामंदक या रामदास, विष्णुशर्मा या माइकेवेली ने भी नहीं कही है; व्यवहार का जो चातुर्य इसने बतलाया है, उससे अधिक "बेचारे रिचार्ड" के पास भी कुछ नहीं है; और प्रेमी के हृदय और उसकी नानाविध वृत्तियों पर जो प्रकाश इसने डाला है, उससे अधिक पता कालिदास या शेक्सपियर को भी नहीं है।

यह एक भक्त हृदय का उछ्वास है और सम्भव है इसमें उछलते हुये हृदय की लालिमा का कुछ अधिक गहरा आभास आ गया हो। किन्तु जो बात कही गई है, उसके कहने का और सत्य के निकट-तम सामीप्य में ले जाने का, यह एक ही ढङ्ग है। जीवन को उच्च और पवित्र बनाने के लिए जिन तत्वों की आवश्यकता है उनका विश्लेषण धर्म के प्रकरण में आ गया है। राजनीति का गम्भीर विषय बड़ी ही योग्यता के साथ अर्थ के प्रकरण में प्रतिपादित हुआ है और गार्हस्थ्य प्रेम की सुस्निग्ध पवित्र आभा हमें कुरल के अन्तिम प्रकरण में देखने को मिलती है।* यह शायद बहुत बड़ी अतिशयोक्ति नहीं होगी यदि यह कहा जाय कि महान धर्म-ग्रन्थों को छोड़ कर संसार में बहुत थोड़ी ऐसी पुस्तकें होंगी कि जो इसके मुक़ाबिले की अथवा इससे बढ़ कर कही जा सकें। एरियल नामक अँग्रेज़ का कहना है कि कुरल मानवी विचारों का एक उच्चनिष्ठ

---

* यह प्रकरण पृथक् सुन्दर और सचित्र रूप में प्रकाशित होगा।
—लेखक

और पवित्र-तम उद्गार है। गोवर नाम के एक दूसरे योरोपियन का कथन है—'यह तामिल जाति की कविता तथा नीति सम्बन्धी उत्कृष्टता का निस्सन्देह वैसा ही ऊँचे से ऊँचा नमूना है जैसा कि यूनानियों में 'होमर' सदा रहा है।'

धर्म

तिरुवल्लुवर ने ग्रन्थ के आरम्भ में प्रस्तावना के नाम से चार परिच्छेद लिखे हैं। पहिले परिच्छेद में ईश्वर-स्तुति की है और वहीं पर एक गहरे और सदा ध्यान में रखने लायक अमूल्य सिद्धान्त की घोषणा करते हुए कहा है—"धन, वैभव और इन्द्रिय-सुख के तूफ़ानी समुद्र को वही पार कर सकते हैं कि जो उस धर्मसिन्धु मुनीश्वर क चरणों में लीन रहते हैं!" संसार में रहने वाले प्रत्येक मनुष्य को यह सांसारिक प्रलोभन बड़े वेग के साथ चारों ओर से आ घेरते हैं। और कोई भी मनुष्य सच्चा मनुष्य कहलाने का दावा नहीं कर सकता जब तक कि वह जीवन की सड़क पर खेलने वाले इन नटखट शैतानी छोकरों के साथ खेलते हुए अथवा होशियारी के साथ इन्हें अपने रङ्ग में रँग कर इनसे बहुत दूर नहीं निकल जाता। संसार छोड़ कर जंगल में भाग जाने वाले त्यागियो की बात दूसरी है किन्तु इन्हे जब कभी जीवन की इस सड़क पर आने का काम पड़ता है, तब प्रायः इनकी जो गति होती है, उसके उदाहरण संसार के साहित्य में पर्याप्त संख्या में मिलते हैं।

इसीलिए इनसे बचाने के लिए संसार का त्याग अधिक उपयोगी सिद्ध नहीं होता और न संसार के अधिकांश लोग कभी ऐसा ही कर सकते हैं। फिर उस विकार-हीन भगवान् ने अपनी लीला की इच्छा से जब इस ससार की रचना की है तब इन मनोमोहक आकर्षक किन्तु धोखा देने वाली लीलाओं की भूल-भुलैयों से बच कर भाग निकलना ही कहाँ तक सम्भव है। यह संसार मानों बड़ा ही सुन्दर 'लुकीलुकैयों' का खेल है। भगवान् ने हमें अपने से जुदा करके इस संसार में ला पटका

और आप स्वयं इन लीलाओं की भूलभुलैयों के अन्त पर कहीं छिप कर जा बैठे और अब हम अपने उस नटखट प्रियतम से मिलने के लिए छटपटा रहे हैं। हमें चलना होगा, इन्हीं भूलभुलैयों के रास्ते से, किन्तु एक निर्भय और निष्ठावान हृदय को साथ लेकर जिसका अन्तिम लक्ष्य और कुछ नहीं केवल उसी शरारत के पुतले को जा पकड़ना है। मार्ग में एक से एक सुन्दर दृश्य हमें देखने को मिलेंगे जो हमें अपने ही में लीन हो जाने के लिए आकर्षित करेंगे। भाँति भाँति के रंगमञ्चों से उठी हुई स्वर-लहरियाँ हमें अपने साथ उड़ा ले जाने के लिए आ खड़ी होंगी। कितनी मिन्नत, कितनी खुशामद, कितनी चापलूसी होगी इन बातों में—किन्तु हमें न तो इनसे भयभीत होकर भागने की आवश्यकता है और न इन्हें आत्म-समर्पण ही करना है। बाग़ के किनारे खिला हुआ गुलाब का फूल सौन्दर्य और सुगन्ध को भेज कर पास से गुजरने वाले योगी को आह्वान करता है किन्तु वह एक सुस्निग्ध दृष्टि डालता हुआ सदय मधुर मुस्कयान के साथ चला जाता है। ठीक वैसे ही हमें भी इन प्रलोभनों के बीच में से होकर गुज़रना होगा।

इतना ही क्यों, यदि हमारा लक्ष्य स्थिर है, तो हम उस खिलाड़ी की कुछ लीलाओं का निर्दोष आनन्द भी ले सकते हैं और उसके कौशल को समझने में समर्थ हो सकते हैं। जो लक्ष्य को भूल कर मार्ग में खेलने लगता है, उसे तो सदा के लिए गया समझो; किन्तु जिसका लक्ष्य स्थिर है, जिसके हृदय में प्रियतम से जाकर मिलने की सदा प्रज्वलित रहने वाली लगन है, वह किसी समय फ़िसलने वाली ज़मीन पर आकर फिसल भी पड़े, तब भी विशेष हानि नहीं। उसे फ़िसलता हुआ देख कर उसके साथी हँसेंगे, तालियाँ बजायेंगे, और तो और हमारे उस प्रभु के अधरों पर भी एक सदय मुस्क्यान आये बिना शायद न रहे, किन्तु वह धीरे से उठेगा और कपड़े पोंछ कर चल देगा और देखेगा कि उसके साथी अपनी बिखरी हुई हँसी को अभी समेटने भी नहीं पाये हैं कि वह बहुत दूर निकल आया है! यात्रा की यह विषमता ही तो सच्चे यात्री का आनन्द

है। सैनिक के जीवन का सब से अधिक स्वादिष्ट क्षण वही तो होता है न कि जब वह चारों ओर दुर्बल शत्रुओं से घिर जाने पर अपनी युद्ध कला का आत्यन्तिक प्रयोग करके उन पर विजय पाता है ?

इसीलिए संसार के प्रलोभनों से भयभीत न होकर और पतन के भूत से अपनी आत्मा को दुर्बल न बना कर संसार के जो काम हैं, उन्हें हमें करना चाहिए। किन्तु हमारे उद्योगों का लक्ष्य वही धर्म-सिन्धु मुनीश्वर के चरण हो। यदि हम उन चरणों में लीन रहेंगे तो धन-वैभव और इन्द्रिय-सुख का तूफ़ानी समुद्र हमारे अधीन होगा और हम उस पर चढ़ कर उन चरणों के पास पहुँचने में समर्थ होंगे। भगवान् कृष्ण ने ५००० वर्ष पूर्व इसी मार्ग का दिग्दर्शन कराते हुए कहा था—

यत्करोषि यदश्नासि, यज्जुहोषि ददासि यत्।

यत्तपस्यसि कौन्तेय, तत्कुरुष्व मदर्पणम् ॥

अपनी इच्छा की प्रेरणा से नहीं, अपनी वासना के वशीभूत होकर नहीं, बल्कि भगवान् की प्रसन्नता के लिए, ईश्वर के चरणों में भेंट करने के लिए जो मनुष्य काम करने की अपनी आदत डालेगा उसे संसार में रहते हुए, संसार के काम करते हुए भी संसार के प्रलोभन अपनी ओर आकर्षित न कर सकेंगे और न वह तूफ़ानी समुद्र अपने गर्त में डाल कर उसे हज़म कर सकेगा।

प्रस्तावना के चौथे तथा अन्तिम परिच्छेद में धर्म की महिमा का वर्णन करते हुए तिरुवल्लुवर कहते हैं:—

"अपना मन पवित्र रक्खो—धर्म का समस्त सार बस एक इसी उपदेश में समाया हुआ है है।" (४. ३४.)

सदाचार का यह गम्भीर सूत्र है। प्रायः काम करते समय हमारे मन में अनेकों सन्देह पैदा होते हैं उस समय क्या करें और क्या न करें इसका निश्चय करना बड़ा कठिन हो जाता है। गीता में भी कहा है—'किं कर्म किमकर्मेति, कवयोऽप्यत्र मोहिताः' (४. १६.) क्या कर्म है और क्या

अकर्म है, इसका निर्णय करने में कवि अर्थात् बहुश्रुत विद्वान् भी मोह में पड़ जाते हैं। किसी ने कहा भी है—'स्मृतयोरनेकाः श्रुतयो विभिन्नाः। नैको ऋपिर्यस्य वचः प्रमाणम्'। अनेकों स्मृतियाँ हैं, श्रुतियाँ भी विभिन्न हैं और ऐसा एक भी ऋषि नहीं है जिसकी सभी बातें सभी समयों के लिए हम प्रमाण-स्वरूप मान लें'। ऐसी अवस्था में धर्माधर्म अथवा कर्माकर्म का निर्णय कर लेना बड़ा कठिन हो उठता है।

वास्तव में यदि हम ध्यान पूर्वक देखें तो हमें मालूम होगा कि हम बड़े हों अथवा छोटे बड़े भारी विद्वान् हों, अथवा अत्यन्त साधारण मनुष्य।' हम जब कभी भी जो कुछ भी काम करते हैं, अपने मन की प्रेरणा से ही करते हैं। मनुष्य जब किसी विषय का निर्णय करने चलता है तब वह उस विषय के विद्वानों की पक्ष विपक्ष सम्मतियों को तोलता है और एक ओर निर्णय देता है, पर उसका निर्णय होता है वह उसी ओर जिस ओर उसका मन होता है क्योंकि वह उसी पक्ष की युक्तियों को अच्छी तरह समझ सकता है और उन्हीं को पसन्द करता है। जयचन्द के हृदय में ईर्ष्या का साम्राज्य था, इसीलिए देश को गुलाम बनाने का भय भी उसे अपने गर्हित कार्य से न रोक सका। विभीषण के हृदय में न्याय और धर्म का भाव था इसी लिए भातृ-प्रेम और स्वदेश की ममता को छोड़कर वह राम से आ मिला। भीष्म पितामह सब कुछ समझते हुए भी दुर्योधन के अन्न से पले हुए मन की प्रेरणा के कारण अधर्म की ओर से लड़ने को बाध्य हुए। राम ने सौतेली माता की आज्ञा से पिता की आन्तरिक इच्छा के विरुद्ध वनवास ग्रहण किया। परशुराम ने पिता की इच्छा से अपनी जननी का वध किया। कृष्ण को कौरव-पाण्डवों को आपस में लड़ाकर भारत को निर्वीर्य बना देने में भी सङ्कोच न हुआ।

इन सब कार्यों के ऊपर शासन करने वाली चाहो मन की प्रवृत्ति थी। राम के जानकी-त्याग में इस प्रवृत्ति का एक जबरदस्त उदाहरण है। आज भी लोग राम के त्याग की इस पराकाष्ठा को समझ नहीं पाते, पर

उसे समझने के लिए हमें तर्क और बुद्धि को नहीं, राम के मन को समझना होगा। जब मन का चारों ही ओर इतना ज़बरदस्त प्रभाव है तब तिरुवल्लुवर का यह कहना ठीक ही है कि मन को पवित्र रक्खो यही समस्त धर्म का सार है। मनु ने भी कहा है—'सत्य-पूतां वदेत् वाच, मनः पूतं समाचरेत्'। कालिदास लिखते हैं—'सतां हि संदेहपदेषुवस्तुषु प्रमाणमन्तः करणप्रवृत्तयः!' (शाकुन्तल १. २) सत्पुरुष सन्दिग्ध बातों में अपने अन्तःकरण के आदेश को ही प्रमाण मानते हैं और सच तो यह है कि हमारी विद्या और बुद्धि, हमारा ज्ञान और विज्ञान कार्य के समय कुछ भी काम न आयेगा यदि हमने मन को पहिले ही से सुसंस्कृत नहीं कर लिया है। क्या यह अक्सर ही देखने में नहीं आता कि बड़े बड़े विद्वान् अपनी तर्क-सिद्ध बातों के विरुद्ध काम करते हुए पाये जाते हैं। इसका कारण और कुछ नहीं केवल यही है कि हम अच्छी बातों को बुद्धि से तो ग्रहण कर लेते हैं पर उन्हें मन में नहीं उतारते। इसलिए कोठे की तरह बुद्धि में ज्ञान भरते रहने की अपेक्षा हमें अपने मन को संस्कृत करने की ओर अधिक ध्यान देना चाहिए।

परन्तु मन की पूर्ण शुद्धि और पवित्रता एक दिन अथवा एक वर्ष का काम नहीं है। इसमें वर्षों और जन्मों के अभ्यास की आवश्यकता है। हम जब से दुनिया में आते हैं, जब से होश सम्हालते हैं, तब से हमारे मन पर संस्कार पड़ने शुरु हो जाते हैं। इसलिए पवित्रता और पूर्णता के तीर्थ की ओर जाने वाले यात्री को इसका सदा ध्यान रखने की आवश्यकता है। यह काम धीरे-धीरे ज़रूर होता है पर शुरू हो जाने पर यह नष्ट नहीं होता, भगवान् कृष्ण स्वयं इसकी ज़मानत देते हैं—

नेहाभिक्रमनाशोऽस्ति, प्रत्यवायो न विद्यते।
स्वल्प मप्यस्य धर्मस्य, त्रायते महतो भयात॥

कर्मयोग मार्ग में एक बार आरम्भ कर देने के बाद कर्म का नाश नहीं होता और विघ्न भी नहीं होते। इस धर्म का थोड़ा सा भी आचरण बड़े भय से संरक्षण करता है (गीता, अ० २ श्लो० ४०)

गृहस्थ का जीवन

ऋषि तिरुवल्लुवर ने धर्म-प्रकरण को दो भोगों में विभक्त किया है। एक का शीर्षक है गृहस्थ का जीवन और दूसरा तपस्वी का जीवन। यह बात देखने योग्य है कि जीवन की चर्चा में गार्हस्थ्य-धर्म को तिरुवल्लुवर ने कितना महत्व दिया है और वह उसे कितनी गौरव-पूर्ण दृष्टि से देखते हैं। प्रायः देखा जाता है कि जो ऊँची आत्मायें एक बार गृहस्थ-जीवन में प्रवेश कर चुकी हैं, वे इस मोह से छूटने अथवा इसमें न पड़ने का सन्देश देना ही संसार के लिए कल्याणकारी समझती हैं। यह सन्देश ऊँचा हो सकता है, पूजा करने योग्य हो सकता है किन्तु संसार के अधिकांश मनुष्यों के लिए यह उपदेश उससे अधिक उपयोग की चीज नहीं हो सकता। बाल-बच्चों का बोझ लेकर भगवान् के चरणों की ओर यात्रा करने वाले साधारण स्त्री-पुरुषों को ऐसे सन्देश की आवश्यकता है कि जो इन पैदल अथवा बैलगाड़ी में बैठ कर यात्रा करने वाले लाखों जीवों की यात्रा को स्निग्ध सुन्दर और पवित्र बनाये रहे। अनुभवी तिरुवल्लुवर ने वही किया है। उनका सन्देश प्रत्येक नर-नारी के मनन करने योग्य है। उन्होंने जन-साधारण के लिए आशा का द्वार खोल दिया है।

तिरुवल्लुवर वर्णाश्रम-व्यवस्था को मानते हैं और कहते हैं— 'गृहस्थ आश्रम में रहने वाला पुरुष अन्य तीनों आश्रमों का प्रमुख आश्रय है' (४१) यह एक नित्य सत्य है जिससे कोई इन्कार नहीं कर सकता। गृहस्थ-जीवन की अवहेलना करने वाले लोग भी इस तथ्य को मानने के लिए मजबूर होते हैं और निस्सन्देह जो गृहस्थ अपने गार्हस्थ्य-धर्म का भार वहन करते हुए ब्रह्मचारियों को पवित्र ब्रह्मचर्य-व्रत धारण करने में समर्थ बनता है, त्यागियों और सन्यासियों को तपश्चर्या में सहायता देता है और अपने भूले-भटके भाइयों को सदय मधुर सुस्पष्ट वाक्य से उँगली पकड़ कर आगे बढ़ने के लिए उत्साहित करता है, वही तो संसार

के मतलब की चीज़ है। उसे देखकर स्वयं भगवान् अपनी कला अपनी कृति को कृतार्थ समझेंगे। हमारे दाक्षिणात्य ऋषि की घोषणा है—'देखो' गृहस्थ जो दूसरे लोगों को कर्त्तव्य-पालन में सहायता देता है और स्वयं भी धार्मिक-जीवन व्यतीत करता है, वह ऋषियों से भी अधिक पवित्र है।' (४८) कितना स्पष्ट और बोझ से दबी हुई आत्माओं में आह्लादमयी आशा का संचार करने वाला है यह सन्देश! तिरुवल्लुवर यहीं पर कहते हैं—"मुमुक्षुओं में श्रेष्ठ वे लोग हैं जो धर्मानुकूल गार्हस्थ्य-जीवन व्यतीत करते हैं।" (४७)

गृहस्थ-आश्रम की नींव में दो ईंटें हैं—स्त्री और पुरुष। इन दोनों में जितनी परिपक्वता एकात्मीयता होगी, ये दोनों एक दूसरी से जितनी अधिक सटी हुई होंगी, आश्रम की इमारत उतनी ही सुदृढ़ और मज़बूत होगी। इन दोनों ही के अन्तःकरण धार्मिकता की अग्नि में पक कर यदि सुदृढ़ बन गये होंगे तो तूफ़ान पर तूफ़ान आयेंगे पर उनका कुछ न बिगाड़ सकेंगे। गार्हस्थ्य-धर्म में स्त्री का दर्जा बहुत ऊँचा है। वास्तव में उसके आगमन से ही गृहस्थ-जीवन का सूत्रपात होता है। इसीलिए गृहस्थ-आश्रम की चर्चा कर चुकते ही तिरुवल्लुवर ने एक परिच्छेद सहधर्म-चारिणी के वर्णन पर लिखा है। तिरुवल्लुवर चाहते हैं कि सहधर्मचारिणी में सुपत्नीत्व के सब गुण वर्तमान हों। (५१) स्त्री यदि स्त्रीत्व के गुणों से रहित है तो गार्हस्थ्य-जीवन व्यर्थ है। स्त्री यदि सुयोग्य है तो फिर किसी बात का अभाव नहीं। किन्तु स्त्री के अयोग्य होने पर सब कुछ घर में होते हुए भी मनुष्य के पास कहने लायक कुछ नहीं होता है। स्त्रीत्व की कोमलतम कल्पना यह है कि वह अपने व्यक्तित्व को ही अपने पति में मिला देती है और इसीलिए वह पुरुष की अर्धांगिनी कहलाती है। यह मानों जीव और ईश्वर के मिलन का एक स्थूल और प्रत्यक्ष भौतिक उदाहरण है और सदा सन्मार्ग का अनुशीलन और अवलम्बन करने से अन्ततः उस स्थिति तक पहुँचा देने में समर्थ है।

'जो स्त्री दूसरे देवताओं की पूजा नहीं करती, मगर बिस्तर से उठते ही

अपने पतिदेव को पूजती है—जल से भरे हुए बादल भी उसका कहा मानते हैं।' यह भारतीय भावना सदा से ही रही है और अब तक संस्कार रूप में हमारे अन्दर मौजूद है। इस आदर्श को अपना जीवन-सर्वस्व मान कर व्यवहार करने वाली स्त्रियाँ यद्यपि अब भारतवर्ष में अधिक नहीं हैं फिर भी उनका एक दम ही अभाव नहीं है। आज भी भारत का जन-समूह इस आदर्श को सिर झुका कर मानता है और जिनमें भी यह आदर्श चरितार्थ होता हुआ दिखाई देता है, उसमें राजाओं और महात्माओं से भी अधिक लोगों की श्रद्धा होती है।

स्त्री-स्वातंत्र्य की चर्चा अब भारत में भी फैल रही है। ऐसे काल और ऐसे देश भी इस संसार के इतिहास में अस्तित्व में आये हैं कि जिन में स्त्रियों की प्रभुता थी। आज जो पुरुष के कर्तव्य हे, उन्हें स्त्रियाँ आगे बढ़ कर दृढ़तापूर्वक करती थीं और पुरुष आजकल की स्त्रियों की भाँति पर मुखापेक्षी होते—अपनी स्त्रियों के सहारे जीवित रहते। अमेज़न स्त्रियाँ तो बेतरह पुरुषों से घृणा करतीं, उन्हें अत्यन्त हेय समझतीं। जैसे हम समझते हैं कि पुरुषों में ही पौरुष होता है, वैसे ही यह जाति समझती थी कि वीरता और दृढ़ता जैसे पौरुष-सूचक कार्यों के लिए स्त्रियाँ ही पैदा हुई हैं। पुरुष निरे निकम्मे और बोदे होते हैं। इसीलिए लड़की पैदा होने पर वे खुशी मनाते और लड़के को जन्मसे ही प्रायः मार डालते—

पुरुषों की उपर्युक्त अवस्था निस्सन्देह अवाञ्छनीय और दयनीय है पर भारत के उच्च वर्गों की स्त्रियों की वर्तमान अपगुता भी उतनी ही निन्दनीय है। वांछनीय अवस्था तो यह है कि स्त्री और पुरुष दोनों एक दूसरे को प्रेम-पूर्वक सहायता देते हुए पूर्ण बनने की चेष्टा करें। यह सच है, प्रेम में छुटाई बड़ाई नहीं होती। प्रेम में तो दोनों ही एक दूसरे को आत्म समर्पण कर देते हैं पर लोक-संग्रह के लिए, गृहस्थी का काम चलाने के लिए यह आवश्यक हो उठता है कि दो में से एक दूसरे की अधीनता स्वीकार करे और यह अधीनता जब प्रेम-रस से सनी हुई होगी तो पराकाष्ठा को पहुँचे बिना न रहेगी; पर यह प्रेमाभिषिक्त

नितान्त समर्पण उन्नति में बाधक होने के बजाय दोनों ही के कल्याण का कारण बन जाता है। ऐसी अवस्था में, संसार की स्थिति और भारत की संस्कृति का ध्यान रखते हुए यही ठीक जँचता है कि तिरुव-ल्लवर के उपर्युक्त आदर्श के अनुसार ही व्यवहार करें।

स्त्री, सुकोमल भावनाओं की प्रतिमूर्ति है; आत्म-त्याग और सहन-शीलता की देवी है। यह उसीसे निभ सकता है कि हीन से हीन मनुष्य को देवता मान कर उसकी पूजा कर सके। 'अन्ध बधिर रोगी अति कोढ़ी' आदि विशेषणों वाले पति का भी अपमान न करने का जो उपदेश तुलसीदास जी ने दिया है वह निस्सन्देह बहुत बड़ा है किन्तु यदि संसार में ऐसी कोई स्त्री है कि जो इस तलवार की धार पर चल सकती है तो वह संसार की बड़ी से बड़ी चीज़ से भी बहुत बड़ी है। पति-परायण ही स्त्री के जीवन का सार है और जहाँ पति तिरुवल्लुवर हो, वहाँ वासुकी बनना तो स्वर्गीय आनन्द का आस्वादन करना है। स्त्री का अपने पति के चरणों में लीन हो जाना, उसकी आज्ञाधारिणी होना कल्याण का राजमार्ग है। पर एक विचित्र भयङ्कर अपवाद है जिससे इन दिनों मुमुक्षु स्त्री को सावधान रहना परमावश्यक है। पति की आज्ञा अनुल्लंघनीय है बशर्ते कि वह स्त्री-धर्म के प्रतिकूल न हो। द्विजेन्द्रलाल राय ने 'उस पार' में सरस्वती से जो कहलाया है वह ध्यान देने योग्य है। सरस्वती अपने दुष्ट पति से जो कहती है उसका सार यह है:—

'सतीत्व मेरा देवता है। तुम मेरे पति, उस देवता की आराधना के साधन हो—देवता को प्रसन्न करने के लिए पत्र-पुष्प मात्र हो'।

यह कहा जा सकता है कि स्त्री का साध्य सतीत्व है और पति उसका बड़ा ही सुन्दर साधन है। सतीत्व इष्ट देव है और पति वहाँ तक पहुँचाने वाला गुरू है। सतीत्व निराकार ईश्वर है और पति उसकी साकार प्रतिमा। पति के लिए यदि सारा संसार छोड़ा जा सकता है तो ज़रूरत पड़ने पर सतीत्व के लिए पति भी छोड़ दिया जा सकता है।

सन्तान

'सुसम्मानित पवित्र गृह सर्वश्रेष्ठ वर है, और सुयोग्य सन्तति उसके महत्व की पराकाष्ठा। है' (६०)

इस पद में तिरुवल्लुवर ने गृहस्थ धर्म का सार खींचकर रख दिया है। गृहस्थ के लिए इससे बढ़ कर और कोई बात नहीं हो सकती कि वह एक 'सुसम्मानित पवित्र गृह' का स्वामी अथवा अधिवासी हो। सच है, "जिस मनुष्य के घर से सुयश का विस्तार नहीं होता, वह मनुष्य अपने दुश्मनों के सामने गर्व से माथा ऊंचा करके सिंह-ध्वनि के साथ नहीं चल सकता"। (५९) इसलिए यह आवश्यक है कि हम सतत ऐसे प्रयत्न में संलग्न रहें कि जिससे शुद्ध संस्कार और सदाचार-पूर्ण वातावरण हमारे घर की बहुमूल्य सम्पत्ति हो और हम उसकी अभिवृद्धि और रक्षा में दत्त-चित्त रहें। पर यह परम पवित्र ईश्वरीय प्रसाद यों ही, जबरदस्ती, लकड़ी के बल से हमें प्राप्त नहीं हो सकता, इसके लिए हमें खुद अपने को योग्य बनाना होगा। जो रूह हम अपने घर में फूंकना चाहते हैं, "उसकी हमें स्वयं आराधना करनी होगी। इसलिए तिरुवल्लुवर सच्ची मर्दानगी की ललकार कर घोषणा करते हुए कहते हैं; शाबास है, उसकी मर्दानगी को, कि जो पराई स्त्री पर नजर नहीं डालता ! वह केवल नेक और धर्मात्मा ही नहीं, वह सन्त है !" (१४८) वह सन्त हो या न हो किंतु वह मर्द है, सच्चा मर्द है और ऐसे मर्द पर सैकड़ों सन्त और धर्मात्मा अपने को निछावर कर देंगे।

ऐसे ही मर्द और ऐसी ही साध्वी स्त्रियाँ सुयोग्य सन्तति पाने के हकदार होते हैं। गृहस्थ-धर्म का चरम उद्देश्य वास्तव में यही है कि मनुष्य मिलजुल कर अपनी उन्नति करते हुए भगवान् की बनाई हुई इस लीलामय कृति को जारी रक्खे और उसके सौन्दर्य की अभिवृद्धि करें इस संसार पर शासन करने वाली सत्ता की, मालूम होता है, यह आन्तरिक इच्छा है कि स्त्री और पुरुष अपने गुणों और अनुभवों का

सारभूत एक प्रतिमूर्ति अपने पीछे अवश्य छोड़ जायँ और इसीलिए काम वासना जैसा दुर्दमनीय प्रलोभन उसने प्राणियों के पीछे लगा दिया है। किन्तु मनुष्य का यह कर्त्तव्य है कि वह अपने काम को होशियारी के साथ करे। भगवान् का काम इससे पूरा न होगा कि हम अनेकों मानवी कीड़ों-मकोड़ों की अभिवृद्धि करके चल दें। उसकी इच्छा है कि हम संसार के सद्गुणों का सञ्चय करें और उस समुच्चय को पुत्र के रूप में मूर्तिमान बना कर संसार को दान कर जायँ। हम सुयोग्य सन्तति प्राप्त कर सकते हैं, बशर्ते कि हम उसकी इच्छा करें, उसके लिए चेष्टा करें और अपने को योग्य बनावें।

"पुत्र के प्रति पिता का कर्तव्य क्या है? बस यही कि वह उसे सभा में प्रथम पंक्ति में बैठने योग्य बनाये।" (६७) इसके अतिरिक्त एक ख़ास बात जो तिरुवल्लुवर चाहते हैं वह सन्तान का निष्कलङ्क आचरण है। इसके लिए वे कहते हैं—"वह पुरुष धन्य है जिसके बच्चों का आचरण निष्कलङ्क है— सात जन्म तक उसे कोई बुराई छू न सकेगी" (६२) बुद्धिमान, सदाचारी और योग्य सन्तान तिरुवल्लुवर पसन्द करते हैं और वे चाहते हैं कि माता-पिता इसे अपना कर्तव्य समझें कि वह ऐसी ही सन्तान पैदा करें और शिक्षा-दीक्षा देकर उसे ऐसा ही बनावें। यह बात अब निर्विवाद है कि बालक की शिक्षा उसी समय से शुरू हो जाती है कि जब वह गर्भ में आता है और यह शिक्षा उस समय तक बराबर जारी रहती है जब तक कि वह मृत्यु की गोद में सो नहीं जाता। यह बात भी निस्सन्दिग्ध है कि बाल्य-काल में जो संस्कार पड़ जाते हैं, वे स्थाई और बड़े ही प्रबल होते हैं। इसलिए योग्य सन्तान पैदा करने की इच्छा रखने वालों को चाहिए कि वे जैसी सन्तान चाहते हैं, वैसी भावनाओं और वैसे गुणों को अपने अन्दर आश्रय दें और बालक के गर्भ में आने के बाद कोई ऐसी चेष्टा न करें जो बुरी हो। एक बात और है जिसे हम प्रायः भूल जाते हैं। लोग समझते हैं कि बालक तो बालक ही है, वह कुछ सुनता समझता थोड़े

ही है। इसीलिए जो बातें हम समझदार आदमियों के सामने करना पसन्द नहीं करेंगे, उन्हें छोटे छोटे बच्चों की मौजूदगी में करने में ज़रा भी नहीं झिझकते।

वास्तव में यह बड़ी भारी भूल है, जिसके कारण बच्चों के विकास पर अज्ञात रूप से भयङ्कर आघात हो रहा है। बच्चे देखने में निर्दोष और भोले-भाले अवश्य हैं पर संस्कार ग्रहण करने की उन में बड़ी जबरदस्त और अद्भुत शक्ति है। वे जो कुछ देखते हैं और सुनते हैं, उसका सूक्ष्मातिसूक्ष्म प्रभाव उन पर पड़े बिना नहीं रहता जो आगे चल कर प्रबल बन जाता है। इसलिए यदि बालक अनन्य भाव से अपने खिलौने के साथ खेलने में मस्त हों या चारपाई पर पड़ी हुई किताब को फाड़ने के महान् प्रयास में व्यस्त हो यह न समझो कि यह निरा बालक है, वह हमारी बातें समझ नहीं सकता; बल्कि वास्तव में यदि यह इच्छा है कि हमारे बालक पर कोई बुरा संस्कार न पड़े, तो यह समझलो कि यह बालक नहीं है स्वयं भगवान् बालक का रूप धारण करके हमारी बातों को देखने और सुनने के लिए आ बैठे हैं।

सन्तान-पालन का उत्तरदायित्व जितना महान् है, भगवान् ने कृपा करके उसे उतना ही सुस्निग्ध भी बना दिया है। बच्चों का प्रेम अलौकिक है। वह हमारे हृदय की कठोरता, दुर्बलता और परिश्रान्ति को दूर करके उसे सबल और पवित्र बना देता है। बच्चे मानो चलते-फिरते हँसते-बोलते खिलौने हैं। यह सजीव कठपुतलियाँ हमारा दिल बहलाने के लिए भगवान् ने भेजी हैं। जब हम ऊषा की पवित्र आभा को देखते हैं, जब हम गुलाब की शुगुफ्तगी और ताज़गी से प्रभावित होते हैं, जब बुलबुल की मनोमोहक स्वर-लहरी पर हमारे कान अनायास ही आकर्षित हो जाते हैं, तब हम समझते हैं कि क्यों भगवान् ने इन सब गुणों का एक ही जगह, हमारे बच्चों में, समावेश कर दिया है।
"बंसी की ध्वनि प्यारी और सितार का स्वर मीठा है—ऐसा वे ही लोग कहते हैं जिन्होंने अपने बच्चों की तुतलाती हुई बोली नहीं सुनी

है।" (६६) तिरुवल्लुवर बहुत ठीक कह गये हैं "बच्चों का स्पर्श शरीर का सुख है और कानों का सुख है उनकी बोली को सुनना" (६५) यह हमारे अनन्य परिश्रम का अनन्य पारितोषिक है। पर यह पारितोषिक इसीलिए दिया गया है कि हम अपने उत्तरदायित्व को ईमान्दारी के साथ निभावें।

सन्तान का क्या कर्तव्य है? इस महान् गूढ़ तत्व को तिरुवल्लुवर अत्यन्त सूक्ष्म किन्तु वैसे ही स्पष्ट रूप में कहते हैं—

"पिता के प्रति पुत्र का कर्तव्य क्या है? यही कि संसार उसे देख कर उसके पिता से पूछे—किस तपस्या के बल से तुम्हें ऐसा सुपुत्र प्राप्त हुआ है?"

सद्‌ग्रहस्थ के गुण

मनुष्य किस प्रकार अपने को उच्च और सफल सद्‌ग्रहस्थ बना सकता ह, उस मार्ग का दिग्दर्शन अगले परिच्छेदों में कराया गया है। तिरुवल्लुवर इन सदगुणों में सबसे पहले प्रेम की चर्चा करते हैं, मानों यह सब गुणों का मूल-स्रोत है। जो मनुष्य प्रेम के रहस्य को समझता है और जो प्रेम करना जानता है उसे आत्मा को उच्च बनाने वाले अन्य सद्‌गुण अनायास ही प्राप्त हो जाते हैं। तिरुवल्लुवर का यह कथन अनूठा है—"कहते हैं, प्रेम का मज़ा चखने ही के लिए आत्मा एक बार फिर अस्थि-पिंजर में बन्द होने के लिए राज़ी हुआ है।" बुरों के साथ भी प्रेममय व्यवहार करने का उनका अनुरोध है। (७६) कृतज्ञता का उपदेश देते हुए वे कहते हैं—"उपकार को भूल जाना नीचता है; किंतु यदि कोई भलाई के बदले बुराई करे तो उसको फ़ौरन ही भुला देना शराफ़त की निशानी है।" (१०८) आत्म-संयम के विषय में गृहस्थ को व्यावहारिक उपदेश दिया है। यह बिलकुल सच है—"आत्म संयम से स्वर्ग प्राप्त होता है, किन्तु असंयत इन्द्रियलिप्सा रौरव नरक के लिए खुला राज-मार्ग है।" (१२१) सदाचार पर खासा ज़ोर दिया

है पृथ्वी की तरह क्षमावान होना चाहिए, क्षमा, तपश्चर्या से भी अधिक महत्व-पूर्ण है। बहुत से ऐसे तपस्वी हुए हैं जो ज़रा ज़रा सी बात पर नाराज़ होकर दूसरे का नाश करने के लिए अपने तप का ह्रास कर बैठे हैं। तिरुवल्लुवर कहते हैं—"संसार त्यागी पुरुषों से भी बढ़ कर सन्त वे हैं जो अपकी निन्दा करने वालों की कटु-वाणी को सहन कर लेते हैं"। (१५९) आगे चल कर ईर्ष्या न करना, चुगली न खाना, पाप-कर्मों से डरना आदि उपदेश हैं। गृहस्थ जीवन के अन्त में कीर्ति का सात्विक प्रलोभन देकर, मनुष्यों को सत्कर्मों की ओर प्रेरित करने का प्रयास किया है। 'बदनाम लोगों के बोझ से दबे हुए देश को देखो, उसकी समृद्धि भूतकाल में चाहे कितनी ही बढ़ी-चढ़ी क्यों न रही हो, धीरे-धीरे नष्ट हो जायगा'—इस पद को देख कर अनायास ही भारतवर्ष की याद हो आती है। तिरुवल्लुवर कहते हैं, "वे ही लोग जीते हैं जो निष्कलङ्क जीवन व्यतीत करते हैं और जिनका जीवन कीर्ति-विहीन है, वास्तव में वे ही मुर्दा हैं"। (२३०)

तपस्वी का जीवन

इसके बाद धर्म-प्रकरण के अन्तर्गत तिरुवल्लुवर ने तपस्वी जीवन की चर्चा की है और इसे उन्होंने संयम और ज्ञान-इन दो भागों में विभक्त किया है। सबसे पहले उन्होंने दया को लिया है। जो मनुष्य अपने पराये के भाव को छोड़ कर एकात्म्य-भाव का सम्पादन करता है उसके लिए सब पर दया करना आवश्यक और अनिवार्य है। 'विशुद्ध चित्त वाले मनुष्य के लिए सत्य को पा लेना जितना सहज है, कठोर हृदय पुरुष के लिए नेकी के काम करना उतना ही आसान है'—यह तिरुवल्लुवर का मत है। दया यदि तपस्वियों का सर्वस्व है तो वह गृहस्थों का सर्वोच्च भूषण है।

तपस्वी जीवन में तिरुवल्लुवर मक्कारी को बहुत बुरा समझते हैं। "खुद उसके ही शरीर के पंचतत्व मन ही मन उस पर हँसते हैं जब

कि वह मक्कार की चालबाज़ी और ऐयारी को देखते हैं।" (२६१) 'विषकुम्भं पयोमुखम्' लोगों को अन्त में पछताना पड़ेगा। ऐसे लोगों को वे घुँघची के सदृश्य समझते हैं कि जिसका बाह्य तो सुन्दर होता है। पर दिल काला होता है। तिरुवल्लुवर चेतावनी देते हुए कहते हैं—'तीर सीधा होता है और तम्बूरे में कुछ टेढ़ापन होता है, इसलिए आदमियों को सूरत से नहीं बल्कि उनके कामों से पहिचानो।" (२६९)

तिरुवल्लुवर सत्य को बहुत ऊँचा दर्ज़ा देते हैं। एक जगह तो वह कहते हैं—"मैंने इस संसार में बहुत सी चीज़ें देखी हैं, मगर मैंने जो चीज़ें देखी हैं उनमें सत्य से बढ़ कर और कोई चीज़ नही है।" (२८०) पर तिरुवल्लुवर ने सत्य का जो लक्षण बताया है, वह कुछ अनूठा है और महाभारत में वर्णित 'यद्भूतहितमत्यन्तं, एतत्सत्यं मतं मम' से मिलता जुलता है। तिरुवल्लुवर पूछते हैं—"सच्चाई क्या है?" और फिर उत्तर देते हुए कहते हैं, "जिससे दूसरों को किसी तरह का ज़रा भी नुक़सान न पहुँचे, उस बात को बोलना ही सच्चाई है।" (२७१) मुझे भय है कि सत्य का लक्षण लोगों को प्रायः मान्य न होगा। पर तिरुवल्लुवर यही नहीं रुक जाते, वह तो एक क़दम और आगे बढ़ कर कहते हैं—"उस झूठ में भी सच्चाई की ख़ासियत है जिसके फल-स्वरूप सरासर नेकी ही होती हो"। (२७२) तिरुवल्लुवर शब्दों में नहीं, सजीव भावना में सत्य की स्थापना करते हैं। जो लोग कड़वी और दूसरों को हानि पहुँचाने वाली बात कहने से नहीं चूकते, बल्कि मन में अभिमान करके कहते हैं, 'हमने तो जो सत्य बात थी वह कह दी।' वह यदि तिरुवल्लुवर द्वारा वर्णित सत्य के लक्षण पर किञ्चित् ध्यान देंगे तो अनुचित न होगा। प्रायः लोग 'सत्य' को ही इष्ट देवता मानते हैं पर तिरुवल्लुवर सत्य को संसार में सबसे बड़ी चीज़ मानते हुए भी उसे स्वतंत्र 'साध्य' न मान कर संसार के कल्याण का 'साधन' मानते हैं।

क्रोध न करने का उपदेश देते हुए कहा है—"क्रोध जिसके पास

पहुँचता है उसका सर्वनाश करता है और जो उसका पोषण करता है उसके कुटुम्ब तक को जला डालता है।" यह उपदेश जितना तपस्वी के लिए है लगभग उतना ही अन्य लोगों के लिए भी उपादेय है। अहिंसा का वर्णन करते हुए तिरुवल्लुवर उसे ही सबसे श्रेष्ठ बताते, और ऐसा मालूम होता है कि वह उस समय यह भूल जाते हैं कि पीछे सत्य को वे सब से बड़ा बता चुके हैं। "अहिंसा सब धर्मों में श्रेष्ठ धर्म है, सच्चाई का दर्जा उसके बाद है।" पर यह जटिल विषमता दूर हो जायगी जब हम यह देखेंगे कि तिरुवल्लुवर के 'सत्य' और 'अहिंसा' की तह में एक ही भावना की प्राणप्रतिष्ठा की हुई है। वास्तव में तिरुवल्लु-वर का सत्य ही अहिंसामय है। (देखिये टिप्पणी पद्य संख्या २९३)

ज्ञान-खण्ड में 'सांसारिक पदार्थों की निस्सारता' 'त्याग' और 'कामना का दमन' आदि परिच्छेद पढने और मनन करने योग्य हैं। तपस्वी-जीवन के अन्तर्गत जो बातें आई हैं, वे तपस्वियों के लिए तो उपादेय हैं ही पर जो गृहस्थ जितने अंश तक उन बातों का अपने अन्दर समावेश कर सकेगा वह उतना ही उच्च, पवित्र और सफल गृहस्थ हो सकेगा। इसी प्रकार आगे 'अर्थ' के प्रकरण में जो बातें कही गई हैं वे यद्यपि विशेष रूप से राजा और राज्य-तंत्र को लक्ष्य में रख कर लिखी हैं, पर सांसारिक उन्नति की इच्छा रखने वाले सर्वसाधारण गृहस्थ भी अवश्य ही उनसे लाभ उठा सकते हैं।

अर्थ

इस प्रकरण में तिरुवल्लुवर ने विस्तारपूर्वक राजा और राज्य-तंत्र का वर्णन किया है। कवि की दृष्टि में यह विषय कितना महत्त्वपूर्ण है यह इसीसे जाना जा सकता है कि अर्थ का प्रकरण धर्म के प्रकरण से दुगना और काम के प्रकरण से लगभग तिगुना है। राजा और राज्य के लिए जो बातें आवश्यक हैं, उनका व्यावहारिक ज्ञान इसके अन्दर मिलेगा यदि नरेश इस ग्रंथ का अध्ययन करें और राजकुमारों को इसकी शिक्षा

दिलायें तो उन्हे लाभ हुए बिना न रहे। मद्रास प्रान्त के राजा और ज़मीदार विधिपूर्वक इस ग्रन्थ का अध्ययन कराते और अपने बच्चों को पढ़ाते थे। राज-काज से जिन लोगों का सम्पर्क है, उन्हे अर्थ के प्रकरण को एक बार देख जाना आवश्यक है।

नरेशों और ख़ास कर होनहार राजकुमारों को यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि वे मनुष्य हैं। जिनकी सेवा के लिए भगवान् ने उन्हें भेजा है वे स्वयं भी उन्हीं में के हैं। उनका सुख-दुख, उनका हानि-लाभ अपना सुख-दुख और अपना हानि-लाभ है। आज बाल्यकाल से ही उनके और उनके साथियों के बीच में जो भिन्नता की भीत खड़ी कर दी जाती है, वह सुखकर हो ही कैसे सकती है? यह याद दिलाने की ज़रूरत नहीं कि भारतवर्ष के उत्कर्ष-काल में राजकुमार लँगोट बन्द ब्रह्मचारियों की भाँति ऋषियों के आश्रम में विद्याध्यन करने जाते थे और वहाँ के पवित्र वायु-मण्डल में रहकर शरीर, बुद्धि और आत्मा इन तीनों को विकसित और पुष्ट करते थे। किन्तु आज अस्वाभाविक और विकृत वातावरण में रहकर वे जो कुछ सीख कर आते हैं, वह इस बूढ़े भारत के मर्मस्थल को वेधने वाली राजस्थान की एक दर्द भरी अकथ कहानी है।

एक बार एक महाराजकुमार के विद्वान् संरक्षक ने मुझ से कहा था कि इन राजाओं का दिमाग़ झूठे अभिमान से इतना भरा रहता है कि वह स्वस्थ-चित्त और विमल मस्तिष्क के साथ विचार नहीं कर सकते और मौका पड़ने पर कूटनीति का मुक़ाबला करने में असमर्थ होते हैं। इसमें इनका क्या दोष? इनकी शिक्षा-दीक्षा ही ऐसी होती है। बचपन से ही स्वार्थी और खुशामदी लोग और कभी-कभी प्रेमी हितू भी अज्ञानवश इनके इस अभिमान को पोषित करते रहते हैं। इनका अधिकांश समय संसार के सुख-दुख और कठोर वास्तविकता से परिपूर्ण इस विश्व से परे एक अहम्मन्य काल्पनिक जगत् में ही व्यतीत होता है। वे भूल जाते

हैं कि हम संसार के कल्याण के लिए, अपने भाइयों की विनम्र सेवा के लिए भगवान के हाथ औज़ार के रूप में उत्तीर्ण हुए हैं।

जिनके पूर्वजों ने अपने भुजबल के सहारे राज्य स्थापित किये, उन्हें बनाया और बिगाड़ा, आज उन्हीं वीरों के वंशज अपने बचे-खुचे गौरव को भी कायम रखने में इतने असमर्थ क्यों हैं? जो सिंह-शावक अपनी निर्भीक गर्जना से पार्वत्य कन्दराओं को गुञ्जारित करते थे, आज वे पाले जाते हैं सोने के पिंजड़ों में और पहिनते हैं सोने की हथकड़ियाँ और बेड़ियाँ। दूरदर्शी विज्ञान, हृदय के अन्तस्तल में घुसकर उन्हें अपने मतलब की चीज़ बना रहा है हमारे प्राचीन संस्कार उन्हें भरसक रोकने की चेष्टा करते हैं और पूर्वजों की वीर आत्मायें उन्हें तड़फड़ा कर आह्वान करती हैं; किन्तु हाय! यहाँ सुनता कौन है? सुनकर समझने की और उठकर चलने की अब शक्ति भी कहाँ है?

उस दिन एक विद्वान् और प्रतिष्ठित नरेश को मैं तामिल वेद के कुछ उद्धरण सुना रहा था। 'वीर योद्धा का गौरव' शीर्षक परिच्छेद सुनकर उन्होंने एक दोहा कहा जिसे मैंने तत्काल उनसे पूछ कर लिख लिया कि कहीं भूल न जाऊँ। किन्तु किसी पुण्य-चरित्र चारण का बनाया हुआ वह प्यारा-प्यारा पद्य मेरे दिमाग़ से ऐसा चिपका कि फिर भुलाये न भूला। अपने स्थान पर पहुँच कर न जाने कितनी बार मन ही मन मैंने उसे गुनगुनाया और न जाने कितनी बार अपने को भूल कर उसे गाया। मैं गाता था और मेरी चिर-सहचरी कल्पना अभी-अभी बीते हुए गौरव-शाली राजपूती ज़माने को वीरता की रंग से रंगे हुए चित्रों को चित्रित करती जाती थी। आहा, कैसे सुन्दर, कैसे पवित्र और हृदय को उन्मत्त बना देने वाले थे वे दृश्य। मैं मग्न था और मुझे होश आया उस समय कि जब दरवान ने आकर ख़बर दी कि दीवान साहब मिलने आये हैं।

वह पद्य क्या है, राजपूती हृदय की आन्तरिक वीर भावना का प्रकाश है। महावर लगाने के लिए उद्यत नाइन से नवविवाहिता राजबाला कहती है—

नाइन आज न मांड पग, काल सुणाजे जंग ।
धारा लागे सो धणी तब दीजै घण रंग ॥

'अरी नाइन ! सुनते हैं कि कल युद्ध होने वाला है, तब फिर आज यह महावर रहने दे । जब मेरे पति-देव युद्ध-क्षेत्र में वीरता के साथ लड़ते हुए घायल हों और उनके घावों से लाल-लाल रक्त की धार छूटे तब तू भी खूब हुलस-हुलस कर गहरे लाल रंग की महावर मेरे पैरों में रंगना' । एक वीर सती स्त्री के सौभाग्य की यही परम सीमा है ।

वह गौरव-शाली सुनहरा ज़माना था कि जब भारत में ऐसी अनेक स्त्रियाँ मौजूद थीं । उन्होंने भीरु से भीरु मनुष्यों के हृदय में भी रूह फूँक कर बड़ी-बड़ी सेनाओं से उन्हे जुझाया है । अतीत काल की वह कहानी ही तो भारत की एक मात्र सम्पत्ति है । हे ईश्वर, हम गिरें तो गिरें पर दया करके हमारी माताओं के कोमल हृदय में एक बार वह अग्नि फिर प्रज्वलित कर दे ।

इस पुस्तक का परिचय और उसकी उपलब्धि जिन मित्रों के द्वारा मुझे हुई उनका मैं कृतज्ञ हूँ और जिन लोगों ने इसका अनुवाद करने में प्रोत्साहन तथा सहायता प्रदान की है उन सबका मैं आभार मानता हूँ । श्रीयुत हालास्याम अय्यर बी० ए० बी० एल० का मैं विशेष-रूप से कृतज्ञ हूँ जिन्होंने अनुवाद को मूल तामिल से मिलाने में सहायता प्रदान की । स्वर्गीय श्रीयुत वी० वी० एस अय्यर का मैं चिर-ऋणी रहूँगा जिनके कुरल के आधार पर यह अनुवाद हुआ है । वे तामिल जाति की एक विशिष्ट विभूति थे । मेरी इच्छा थी कि मैं मदरास जाकर सामग्री एकत्रित कर उनके पास बैठ कर, यह भूमिका लिखूँ; किन्तु मुझे यह सुन कर दुःख हुआ कि वे अपने स्थापित किये हुए गुरुकुल के एक ब्रह्मचारी को नदी में डूबने से बचाने की चेष्टा में स्वयं डूब गये ! उनकी आत्मा यह देख कर प्रसन्न होगी कि उनका प्यारा श्रद्धा-भाजन ग्रन्थ भारत की राष्ट्र-भाषा में अनुवादित होकर हिन्दी जनता के सामने उपस्थित हो रहा है ।

इस ग्रन्थ की भूमिका श्रीयुत सी. राजगोपालाचार्य ने हमारे निवेदन को स्वीकार कर लिख दी है। आप उसे लिखने के पूर्ण अधिकारी भी थे। अतः हम आपको इस कृपा के लिए हृदय से धन्यवाद देते हैं।

यह ग्रन्थ रत्न जितना ऊँचा है, उसी के अनुकूल किसी ऊँची आत्मा के द्वारा हिन्दी-जनता के सामने रक्खा जाता, तो निस्सन्देह यह बहुत ही अच्छा होता, पर इसके मनन और घनिष्ट संसर्ग से मुझे लाभ हुआ है और इसलिए मैं तो अपनी इस अनधिकार चेष्टा का कृतज्ञ हूँ। मुझे विश्वास है कि जिज्ञासु पाठकों को भी इससे अवश्य आनन्द और लाभ होगा। पर मेरे अज्ञान और मेरी अत्यन्त क्षुद्र शक्तियों के कारण इसमें जो त्रुटियाँ रह गई हों, उनके लिए सहृदय विद्वान् मुझे क्षमा करें।

राजस्थान हिन्दी सम्मेलन
अजमेर
१०-१२-१९२६

मातृ-भाषा का अकिञ्चन-सेवक
क्षेमानन्द 'राहत'

तामिल वेद

प्रस्तावना)
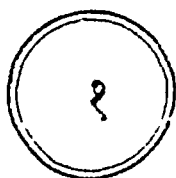
ईश्वर-स्तुति

१. 'अ' शब्द-लोक का मूल स्थान है; ठीक इसी तरह आदि-ब्रह्म सब लोकों का मूल-स्रोत है।

२. यदि तुम सर्वज्ञ परमेश्वर के श्रीचरणों की पूजा नहीं करते हो, तो, तुम्हारी यह सारी विद्वत्ता किस काम की?

३. जो मनुष्य हृदय-कमल के अधिवासी श्रीभगवान के पवित्र चरणों की शरण लेता है, वह संसार में बहुत समय तक जीवित रहेगा।※

४. धन्य है वह मनुष्य, जो आदि-पुरुष के पादारविन्द में रत रहता है कि जो न किसी से प्रेम

※ ईश्वर का वर्णन करते समय तिरुवल्लुवर ने प्रायः ऐसे शब्दों का व्यवहार किया है, जिन्हें साम्प्रदायिक नहीं कहा जा सकता। पर इस पद में वैष्णव भावना का सा आभास है।

करता है और न घृणा। उसे कभी कोई दुःख नही होता।

५. देखो; जो मनुष्य प्रभु के गुणों का उत्साह-पूर्वक गान करते हैं, उन्हें अपने भले-बुरे कर्मों का दुःखप्रद फल नहीं भोगना पड़ता।

६. जो लोग उस परम जितेन्द्रिय पुरुष के दिखाये धर्म-मार्ग का अनुसरण करते हैं, वे दीर्घजीवी होंगे।

७. केवल वही लोग दुःखों से बच सकते हैं; जो उस अद्वितीय पुरुष की शरण में आते हैं।

८. धन-वैभव और इन्द्रिय-सुख के तूफ़ानी समुद्र को वही पार कर सकते हैं कि जो उस धर्म-सिन्धु मुनीश्वर के चरणों में लीन रहते हैं।

९. जो मनुष्य अष्ट गुणों से अभिभूत परब्रह्म के चरण-कमलो मे सिर नहीं झुकाता, वह उस इन्द्रिय के समान है, जिसमें अपने गुण को ग्रहण करने की शक्ति नहीं है।*

१०. जन्म-मरण के समुद्र को वही पार कर सकते हैं कि जो प्रभु के श्रीचरणों की शरण में आ जाते हैं, दूसरे लोग उसे तर ही नहीं सकते।

---

* जैसे अन्धी आँख, बहरा कान।
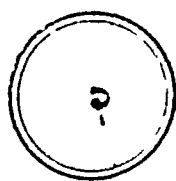
मेघ-स्तुति

१. समय पर न चूकने वाली वर्षा के द्वारा ही धरती अपने को धारण किये हुए है और इसीलिए, मेह को लोग अमृत कहते हैं।

२. जितने भी स्वादिष्ट खाद्य पदार्थ हैं, वे सब वर्षा ही के द्वारा मनुष्य को प्राप्त होते हैं; और वह स्वयं भी भोजन का एक अंश है।

३. अगर पानी न बरसे तो सारी पृथ्वी पर अकाल का प्रकोप छा जाये, यद्यपि वह चारों तरफ समुद्र से घिरी हुई है।

४. यदि स्वर्ग के स्रोत सूख जाँय तो किसान लोग हल जोतना ही छोड़ देंगे।

५. वर्षा ही नष्ट करती है, और फिर नष्ट वर्षा ही है जो नष्ट हुए लोगों को फिर से सरसब्ज करती है।

६. अगर आसमान से पानी की बौछारें आना बन्द हो जायँ तो घास का उगना तक बन्द हो जायगा।

७. खुद शक्तिशाली समुद्र में ही कुत्सित बीभत्सता का दारुण प्रकोप जग उठे, यदि स्वर्गलोक उसके जल को पान करने और फिर उसे वापस देने से इन्कार करदे।*

८. यदि स्वर्ग का जल सूख जाय, तो न तो देवताओं को प्रसन्न करने के लिए यज्ञ-याग होंगे और न संसार में भोज ही दिये जायँगे।†

९. यदि स्वर्ग से जल की धारायें आना बन्द हो जायँ, तो फिर इस पृथ्वी-भर में न कहीं दान रहे, न कहीं तप।‡

१०. पानी के बिना संसार में कोई काम नहीं चल सकता, इसलिए सदाचार भी अन्ततः वर्षा ही पर आश्रित है।

---

* भावार्थ यह है कि समुद्र जो वर्षा का कारण है उसे भी वर्षा की आवश्यकता है। यदि वर्षा न हो तो समुद्र में गन्दगी पैदा हो जाये, जलचरों को कष्ट हो और मोती पैदा होने बन्द हो जायँ।

† समस्त नित्य और नैमित्तिक कार्य बन्द हो जायँगे।

‡ तप सन्यासियों के लिए है और दान गृहस्थियों के लिए।
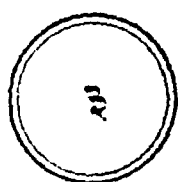
संसार-त्यागी पुरुषों की महिमा

१. देखो; जिन लोगों ने सब-कुछ (इन्द्रिय सुखों को) त्याग दिया है, और जो तापसिक जीवन व्यतीत करते हैं, धर्मशास्त्र उनकी महिमा को और सब बातों से अधिक उत्कृष्ट बताते हैं।

२. तुम तपस्वी लोगों की महिमा को नहीं नाप सकते। यह काम उतना ही मुश्किल है, जितना सब मुर्दों की गणना करना।

३. देखो; जिन लोगों ने परलोक के साथ इहलोक का मुकाबला करने के बाद इसे त्याग दिया है,

उनकी ही महिमा से यह पृथ्वी जगमगा रही है।

४. देखो, जो पुरुष अपनी सुदृढ़ इच्छा-शक्ति के द्वारा अपनी पाँचों इन्द्रियों को इस तरह वश में रखता है, जिस तरह हाथी अंकुश द्वारा वशीभूत किया जाता है, वास्तव में वही स्वर्ग के खेतों में बोने योग्य बीज है।

५. जितेन्द्रिय पुरुष की शक्ति का साक्षी स्वयं देवराज इन्द्र है।*

६. महान् पुरुष वही हैं, जो असम्भव* कार्यों का सम्पादन करते हैं; और दुर्बल मनुष्य वे हैं, जिनसे वह काम हो नहीं सकता।

७. देखो; जो मनुष्य शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध इन पाँच इन्द्रिय-विषयों का यथोचित मूल्य समझता है, वह सारे संसार पर शासन करेगा।†

गौतम की स्त्री अहल्या और इन्द्र की कथा।

* इन्द्रिय-दमन।

† अर्थात् जो जानते हैं कि ये सब विषय क्षणिक सुख देने वाले हैं—मनुष्य को धर्म-मार्ग से बहकाते हैं और इसलिए उनके पंजे में नहीं फँसते हैं।

८. संसार-भर के धर्म-ग्रन्थ सत्य-वक्ता महात्माओं की महिमा की घोषणा करते हैं।

९. त्याग की चट्टान पर खड़े हुए महात्माओं के क्रोध को एक क्षण-भर भी सह लेना असम्भव है।

१०. साधु-प्रकृति पुरुषों ही को ब्राह्मण कहना चाहिए। वही लोग सब प्राणियों पर दया रखते हैं।‡

---

‡ मूल ग्रन्थ में ब्राह्मण वाची जिस शब्द का प्रयोग किया गया, उसका अर्थ ही यह है,—सब पर दया करने वाला।

]
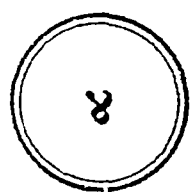
धर्म की महिमा का वर्णन

१. धर्म से मनुष्य को मोक्ष मिलता है, और उससे धर्म की प्राप्ति भी होती है; फिर भला धर्म से बढ़ कर लाभदायक वस्तु और क्या है?

२. धर्म से बढ़ कर दूसरी और कोई नेकी नहीं और उसे भुला देने से बढ़ कर दूसरी कोई बुराई भी नहीं है।

३. नेक काम करने में तुम लगातार लगे रहो, अपनी पूरी शक्ति और सब प्रकार के पूरे उत्साह के साथ उन्हें करते रहो।

४. अपना मन पवित्र रक्खो; धर्म का समस्त सार बस एक इसी उपदेश में समाया हुआ है। बाक़ी और सब बातें कुछ नहीं, केवल शब्दाडम्बर-मात्र हैं।

५. ईर्ष्या, लालच, क्रोध और अप्रिय वचन, इन सबसे दूर रहो। धर्म-प्राप्ति का यही मार्ग है।

६. यह मत सोचो कि मैं धीरे-धीरे धर्म-मार्ग का अवलम्बन करूँगा। बल्कि अभी बिना देर लगाये ही नेक काम करना शुरू कर दो, क्योंकि धर्म ही वह वस्तु है जो मौत के दिन तुम्हारा साथ देने वाला अमर मित्र होगा।

७. मुझसे यह मत पूछो कि धर्म से क्या लाभ है? बस एक बार पालकी उठाने वाले कहारों की ओर देख लो और फिर उस आदमी को देखो, जो उसमें सवार है।

८. अगर तुम एक भी दिन व्यर्थ नष्ट किये बिना समस्त जीवन नेक काम करते हो तो तुम आगामी जन्मों का मार्ग बन्द किये देते हो।

९. केवल धर्म-जनित सुख ही वास्तविक सुख है।*
बाक़ी सब तो पीड़ा और लज्जा-मात्र हैं।

१०. जो काम धर्म-सङ्गत है, बस वही कार्य-रूप में परिणत करने योग्य है। दूसरी जितनी बातें धर्म-विरुद्ध हैं, उनसे दूर रहना चाहिए।

---

* धन, वैभव इत्यादि दूसरी श्रेणी में हैं, यह इस मंत्र का दूसरा अर्थ हो सकता है।

धर्म

पारिवारिक जीवन

१. गृहस्थ-आश्रम मे रहने वाला मनुष्य अन्य तीनों आश्रमो का प्रमुख आश्रय है।

२. गृहस्थ अनाथों का नाथ, गरीबों का सहायक और निराश्रित मृतकों का मित्र है।

३. मृतकों का श्राद्ध करना, देवताओं को बलि देना, आतिथ्य-सत्कार करना, बन्धु-बान्धवों को सहायता पहुँचाना और आत्मोन्नति करना—ये गृहस्थ के पाँच कर्म हैं।

४. जो पुरुष बुराई करने से डरता है और भोजन करने पहले दूसरों को दान देता है, उसका वंश कभी निर्बीज नहीं होता।

५. जिस घर में स्नेह और प्रेम का निवास है, जिसमें धर्म का साम्राज्य है, वह सम्पूर्णतः सन्तुष्ट रहता है—उसके सब उद्देश्य सफल होते

६ अगर मनुष्य गृहस्थ के धर्मों का उचित रूप से पालन करे, तब उसे दूसरे धर्मों का आश्रय लेने की क्या ज़रूरत है ?

मुमुक्षुओं में श्रेष्ठ वे लोग हैं, जो धर्मानुकूल गार्हस्थ्य-जीवन व्यतीत करते

देखो; गृहस्थ, जो दूसरे लोगों को कर्तव्य-पालन में सहायता देता है और स्वयं भी धार्मिक जीवन व्यतीत करता है, ऋषियों से भी अधिक पवित्र है।

९. सदाचार और धर्म का विशेषतः विवाहित

जीवन से सम्बन्ध है, और सुयश उसका आभूषण है।*

१०. जो गृहस्थ उसी तरह आचरण करता है कि जिस तरह उसे करना चाहिए, वह मनुष्यों में देवता समझा जायगा।

---

* दूसरा अर्थ—गार्हस्थ्य-जीवन ही वास्तव में धार्मिक जीवन है; तापसिक जीवन भी अच्छा है, यदि कोई ऐसे काम न करें, जिनसे लोग घृणा करें।
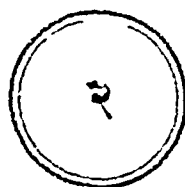
सहधर्मिणी

१. वही नेक सहधर्मिणी है, जिसमें सुपत्नीत्व के सब गुण वर्तमान हों और जो अपने पति के सामर्थ्य से अधिक व्यय नहीं करती।*

२. यदि स्त्री स्त्रीत्व के गुणों से रहित हो तो और सब नियामतों (श्रेष्ठ वस्तुओं) के होते हुए भी गार्हस्थ्य-जीवन व्यर्थ है।

३. यदि किसी की स्त्री सुयोग्य है तो फिर ऐसी कौन सी चीज है जो उसके पास मौजूद नहीं ?

---

* सा भार्या या गृहेदक्षा, सा भार्या या प्रजावती।
सा भार्या या पति-प्राणा, सा भार्या या पतिव्रता॥

और यदि स्त्री में योग्यता नहीं तो, फिर उसके पास है ही क्या चीज़ ?*

४. स्त्री अपने सतीत्व की शक्ति से सुरक्षित हो तो दुनिया मे, उससे बढ़कर, शानदार चीज़ और क्या है ?

५. देखो; जो स्त्री दूसरे देवताओ की पूजा नहीं करती किन्तु बिछौने से उठते ही अपने पतिदेव को पूजती है, जल से भरे हुए बादल भी उसका कहना मानते हैं।

६. वही उत्तम सहधर्मिणी है, जो अपने धर्म और अपने यश की रक्षा करती है और प्रेम-पूर्वक अपने पति की आराधना करती है।

७. चहारदिवारी के अन्दर पर्दे के साथ रहने मे क्या लाभ ? स्त्री के धर्म का सर्वोत्तम रक्षक उसका इन्द्रिय-निग्रह है।

---

* यदि स्त्री सुयोग्य हो तो फिर ग़रीबी कैसी ? और यदि स्त्री में योग्यता न हो तो फिर अमीरी क्यों ?

८. जो स्त्रियाँ अपने पति की आराधना करती हैं, स्वर्गलोक के देवता उनकी स्तुति करते हैं।*

९. जिस मनुष्य के घर से सुयश का विस्तार नहीं होता, वह मनुष्य अपने दुश्मनों के सामने गर्व से माथा ऊँचा करके सिंह-ध्वनि के साथ नहीं चल सकता।

१०. सुसम्मानित पवित्र गृह सर्वश्रेष्ठ वर है, और सुयोग्य सन्तति उसके महत्व की पराकाष्ठा।

---

* दूसरा अर्थ—धन्य है वह स्त्री, जिसने योग्य पुत्र को जन्म दिया है। देवताओं के लोक में उसका स्थान बहुत ऊँचा है।

सन्तति

१. बुद्धिमान सन्तति पैदा होने से बढ़ कर दूसरी नियामत हम नहीं जानते ।

२. वह मनुष्य धन्य है, जिसके बच्चों का आचरण निष्कलंक है—सात जन्म तक उसे कोई बुराई छू न सकेगी ।

३. सन्तति मनुष्य की सच्ची सम्पति है; क्योंकि, वह अपने सञ्चित पुण्य को अपने कर्मों द्वारा उसके अर्पण कर देती है ।

४. निस्सन्देह अमृत से भी अधिक स्वादिष्ट वह

साधारण "रसा" है- जिसे अपने बच्चे छोटे-छोटे हाथ डाल कर घँघोलते है)

५. बच्चो का स्पर्श शरीर का सुख है और कानों का सुख है उनकी बोली को सुनना।

६. वंशी की ध्वनि प्यारी और सितार का स्वर मीठा है—ऐसा वे ही लोग कहते हैं, जिन्होने अपने बच्चों की तुतलाती हुई बोली नहीं सुनी है।

७. पुत्र के प्रति पिता का कर्तव्य यही है कि वह उसे सभा में, प्रथम पंक्ति में, बैठने के योग्य बना दे।

८. बुद्धि में अपने बच्चों को अपने से बढ़ा हुआ पाने में सभी को सुख होता है।

९. माता की खुशी का कोई ठिकाना नहीं रहता, जब उसके गर्भ से लड़का उत्पन्न होता है; मगर उससे भी कहीं ज्यादा खुशी उस वक्त होती है, जब लोगों के मुँह से वह उसकी प्रशंसा सुनती है।

१० पिता के प्रति पुत्र का कर्तव्य क्या है ? यही कि संसार उसे देखकर उसके पिता से पूछे— 'किस तपस्या के बल से तुम्हे ऐसा सुपुत्र प्राप्त हुआ है ?'

प्रेम
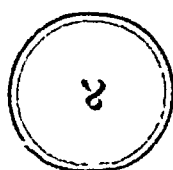
१. ऐसा आड़ा अथवा डंडा कहाँ है, जो प्रेम के दरवाजे को बन्द कर सके ? प्रेमियों की आँखों के सुललित अश्रु-बिन्दु अवश्य ही उसकी उपस्थिति की घोषणा किये बिना न रहेंगे ।

२. जो प्रेम नहीं करते, वे सिर्फ अपने ही लिए जीते हैं; मगर वे जो दूसरों को प्यार करते हैं, उनकी हड्डियाँ भी दूसरों के काम आती हैं ।

३. कहते हैं कि प्रेम का मजा चखने के लिए ही आत्मा एक बार फिर अस्थि-पञ्जर में बन्द होने को राजी हुआ है ।

४. प्रेम से हृदय स्निग्ध हो उठता है और उस स्नेहशीलता से ही मित्रता-रूपी बहुमूल्य रत्न पैदा होता है।

५. लोगों का कहना है कि भाग्यशाली का सौभाग्य उसके निरन्तर प्रेम का ही पारितोषिक* है।

६. वे मूर्ख हैं, जो कहते हैं कि प्रेम केवल नेक आदमियों ही के लिए है; क्योंकि बुरों के विरुद्ध खड़े होने के लिए भी प्रेम ही मनुष्य का एक-मात्र साथी है।†

७. देखो; अस्थि-हीन कीड़े को सूर्य किस तरह जला देता है! ठीक इसी तरह नेकी उस मनुष्य को जला डालती है, जो प्रेम नहीं करता।

८. जो मनुष्य प्रेम नहीं करता वह तभी फूले-

---

* इहलोक और परलोक दोनों स्थानों में।

† भले लोगों ही के साथ प्रेममय व्यवहार किया जाये, यह सिद्धान्त ठीक नहीं है, बुरे के साथ भी प्रेम का व्यवहार रखना चाहिये क्योंकि बुरों को भला और दुश्मन को दोस्त बनाने के लिये प्रेम से बढ़ कर दूसरी और कोई कीमिया नहीं है।

फलेगा कि जब मरुभूमि के सूखे हुए वृक्ष के ठुण्ठ में कोंपलें निकलेगी ?

९. बाह्य सौन्दर्य किस काम का, जब कि प्रेम, जो आत्मा का भूषण है, हृदय में न हो !

१०. प्रेम जीवन का प्राण है। जिसमें प्रेम नहीं, वह केवल मांस से घिरी हुई हड्डियों का ढेर है।*

---

* 'जा घट प्रेम न संचरे, सो घट जान मसान'
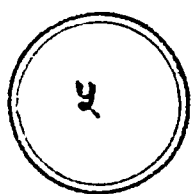
मेहमानदारी

१. बुद्धिमान लोग, इतनी मेहनत करके, गृहस्थी किस लिए बनाते हैं ? अतिथि को भोजन देने और यात्री की सहायता करने के लिए ।

२. जब घर मे मेहमान हो तब चाहे अमृत ही क्यो न हो, अकेले नहीं पीना चाहिए ।

३. घर आये हुए अतिथि का आदर-सत्कार करने मे जो कभी नहीं चूकता, उसपर कभी कोई आपत्ति नहीं आती ।

४. देखो: जो मनुष्य योग्य अतिथि का प्रसन्नता-

पूर्वक स्वागत करता है, उसके घर में निवास करने से लक्ष्मी को आह्लाद होता है।)

५. देखो, जो आदमी पहले अपने मेहमान को खिलाता और उसके बाद ही, जो कुछ बचता है, खुद खाता है, क्या उसके खेत को बोने की भी जरूरत होगी ?

६. देखो; जो आदमी बाहर जाने वाले अतिथि की सेवा कर चुका है और आने वाले अतिथि की प्रतीक्षा करता है, ऐसा आदमी देवताओं का सुप्रिय अतिथि है।

७. हम किसी अतिथि-सेवा के महात्म्य का वर्णन नहीं कर सकते—उसमें इतने गुण हैं। अतिथि-यज्ञ का महत्व तो अतिथि की योग्यता पर निर्भर है।

देखो; जो मनुष्य अतिथि-यज्ञ नहीं करता, वह एक रोज कहेगा—'मैंने मेहनत करके एक बड़ा भारी खजाना जमा किया, मगर हाय ! वह सब बेकार हुआ, क्योंकि वहाँ मुझे आराम पहुँचाने वाला कोई नहीं है।')

९. (धन और वैभव के होते हुए भी जो यात्री का आदर-सत्कार नही करता, वह मनुष्य नितान्त दरिद्र है; यह बात केवल मूर्खों में ही होती है।)

१०. (अनीचा का पुष्प सूँघने से मुर्झा जाता है, मगर अतिथि का दिल तोड़ने के लिए एक निगाह ही काफ़ी है।)
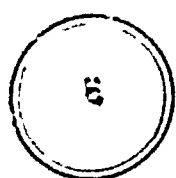
मृदु-भाषण

१. सत्पुरुषों की वाणी ही वास्तव में सुस्निग्ध होती है, क्योंकि वह दयार्द्र, कोमल और बनावट से खाली होती है।

२. (औदार्यमय दान से भी बढ़कर सुन्दर गुण वाणी की मधुरता और दृष्टि की स्निग्धता तथा स्नेहार्द्रता में है।)

३. हृदय से निकली हुई मधुर वाणी और ममतामयी स्निग्ध दृष्टि के अन्दर ही धर्म का निवासस्थान है।

४. (देखो; जो मनुष्य सदा स्निग्ध वाणी बोलता है

कि जो सबके हृदयों को आह्लादित कर दे, उसके पास दुःखों की अभिवृद्धि करने वाली दरिद्रता कभी न आयगी।)

नम्रता और स्नेहार्द्र वक्तृता, बस, केवल यही मनुष्य के आभूषण है, और कोई नहीं।

६. यदि तुम्हारे विचार शुद्ध और पवित्र हैं और तुम्हारी वाणी में सहृदयता है, तो तुम्हारी पाप-वृत्ति का क्षय हो जायगा और धर्मशीलता की अभिवृद्धि होगी।

७. सेवा-भाव को प्रदर्शित करने वाला और विनम्र वचन मित्र बनाता है और बहुत से लाभ पहुँचाता है।

८. वे शब्द जो कि सहृदयता से पूर्ण और क्षुद्रता से रहित होते हैं, इहलोक और परलोक दोनों ही जगह लाभ पहुँचाते हैं।

९. (श्रुति-प्रिय शब्दों के अन्दर जो मधुरता है, उसका अनुभव कर लेने के बाद भी मनुष्य क्रूर शब्दों का व्यवहार करना क्यों नहीं छोड़ता?

१०. (मीठे शब्दों के रहते हुए भी जो मनुष्य कड़वे

शब्दों का प्रयोग करता है, वह मानों पके फल को छोड़कर कच्चा फल खाना पसन्द करता है।※)

※ श्रीयुत् वी० वी० एस० अय्यर ने इस पद्य का अर्थ इस प्रकार किया है:—देखो; जो आदमी मीठे शब्दों से काम चल जाने पर भी कठोर शब्दों का प्रयोग करता है, वह पक्के फल की अपेक्षा कच्चा फल पसंद करता है।

कहावत है:—

'जो गुड़ दीन्हें ही मरे, क्यों विष दीजे ताहि?'
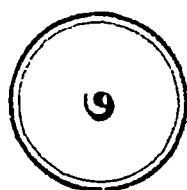
कृतज्ञता

१. एहसान करने के विचार से रहित होकर जो दया दिखाई जाती है, स्वर्ग और मर्त्य दोनों मिल कर भी उसका बदला नहीं चुका सकते।

२. जरूरत के वक्त जो मेहरबानी की जाती है, वह देखने में छोटी भले ही हो, मगर वह तमाम दुनिया से ज्यादा वजनदार है।

३. बदले के ख़याल को छोड़ कर जो भलाई की जाती है, वह समुद्र से भी अधिक बलवती है।

४. किसी से प्राप्त किया हुआ लाभ राई की तरह

छोटा ही क्यों न हो, किन्तु समझदार आदमी की दृष्टि में वह ताड़ के वृक्ष के बराबर है।

५. कृतज्ञता की सीमा किये हुए उपकार पर अवलम्बित नहीं है; उसका मूल्य उपकृत व्यक्ति की शराफत पर निर्भर है।

६. महात्माओं की मित्रता की अवहेलना मत करो; और उन लोगों का त्याग मत करो, जिन्होंने मुसीबत के वक्त तुम्हारी सहायता की।

७. जो किसी को कष्ट से उबारता है, जन्म-जन्मान्तर तक उसका नाम कृतज्ञता के साथ लिया जायगा।

८. उपकार को भूल जाना नीचता है; लेकिन यदि कोई भलाई के बदले बुराई करे तो उसको फौरन ही भुला देना शराफत की निशानी है।*

९. हानि पहुँचाने वाले की यदि कोई मेहरबानी याद आ जाती है तो महाभयंकर व्यथा पहुँचाने वाली चोट उसी दम भूल जाती है।

१० और सब दोषों से कलंकित मनुष्यों का तो उद्धार हो सकता है, किन्तु अभागे अकृतज्ञ मनुष्य का कभी उद्धार न होगा।

---

* अपकारिषु यः साधुः सः साधुः सद्भिरुच्यते।
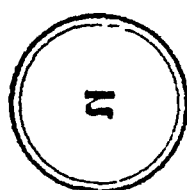
ईमान्दारी तथा न्याय-निष्ठा

१. और कुछ नहीं; नेकी का सार इसीमें है कि मनुष्य निष्पक्ष हो कर ईमान्दारी के साथ दूसरे का हक़ अदा कर दे, फिर चाहे वह दोस्त हो अथवा दुश्मन।

२. न्याय-निष्ठ की सम्पत्ति कभी कम नहीं होती। वह दूर तक, पीढ़ी दर पीढ़ी चली जाती है।

३. नेकी को छोड़ कर जो धन मिलता है, उसे कभी मत छुओ, भले ही उससे लाभ के अतिरिक्त और किसी बात की सम्भावना न हो।

४. (नेक और वद का पता उनकी सन्तान से चलता है ।)

५. भलाई-बुराई तो सभी को पेश आती है, मगर एक न्यायनिष्ठ दिल बुद्धिमानों के गर्व की चीज़ है ।※

६. (जब तुम्हारा मन नेकी को छोड़ कर वदी की ओर चलायमान होने लगे, तो समझ लो तुम्हारा सर्वनाश निकट ही है ।)

७. संसार न्यायनिष्ठ और नेक आदमी की ग़रीबी को हेय दृष्टि से नहीं देखता है ।

८. उस बराबर तुली हुई लकड़ी को देखो, वह सीधी है और इसलिए ठीक बराबर तुली हुई है । बुद्धिमानों का गौरव इसीमें है । वे इसकी तरह बनें—न इधर को झुकें, और न उधर को ।

९. जो मनुष्य अपने मन में भी नेकी से नहीं

※ निन्दन्तु नीति निपुणा यदि वा स्तुवन्तु । लक्ष्मीः समाविशतु गच्छतु वा यथेष्टम् । अद्यैव वा मरण मस्तु युगान्तरे वा । न्याय्यात्पथः प्रविचलन्ति पद न धीरा ॥ भर्तृहरि नी० श० ८४

डिगता है, उसके रास्तबाज़ होठों से निकली हुई बात नित्य सत्य है।

१०। उस दुनियादार आदमी को देखो कि जो दूसरे के कामों को अपने खास कामों की तरह देखता-भालता है; उसके काम-काज में अवश्य उन्नति होगी।
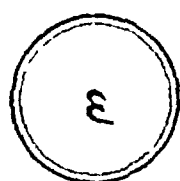
आत्म-संयम

१. आत्म-संयम से स्वर्ग प्राप्त होता है, किन्तु असंयत इन्द्रिय-लिप्सा रौरव नर्क के लिए खुला हुआ शाही रास्ता है।

२. आत्म-संयम की, अपने खज़ाने की तरह, रक्षा करो; उससे बढ़ कर, इस दुनिया में, जीवन के पास और कोई धन नहीं है।

३. जो पुरुष ठीक तरह से समझ-बूझ कर अपनी इच्छाओं का दमन करता है, मेधा और अन्य दूसरी नियामतें उसे मिलेंगी।

४. जिसने अपनी इच्छा को जीत लिया है और जो अपने कर्तव्य से विचलित नहीं होता, उसकी आकृति पहाड़ से भी बढ़कर रोब-दाब वाली होती है।

५. नम्रता सभी को सोहती है, मगर वह अपनी पूरी शान के साथ अमीरों में ही चमकती है।

६. जो मनुष्य अपनी इन्द्रियों को उसी तरह अपने में खींचकर रखता है, जिस तरह कछुआ अपने हाथ-पाँव को खींचकर भीतर छिपा लेता है, उसने अपने समस्त आगामी जन्मों के लिए खज़ाना जमा कर रक्खा है।❀

७. और किसी को चाहे तुम मत रोको, मगर

❀ तिरुवल्लुवर के भाव में और गीता के इस निम्न-लिखित श्लोक में कितना सामञ्जस्य है! इन्द्रिय-निग्रह को दोनों कछुवे के अंग समेटने से उपमा देते हैं और दोनों के बताये हुए फल भी लगभग एक से हैं:—

यदा संहरते चायं कूर्मोंगानीव सर्वशः।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता॥

गीता, अ० २ श्लो० २८

अपनी जुबान को लगाम दो; क्योंकि बेलगाम की जुबान बहुत दुःख देती है।)

८. अगर तुम्हारे एक शब्द से भी किसी को पीड़ा पहुँचती है, तो तुम अपनी सब नेकी नष्ट हुई समझो।

९. आग का जला हुआ तो समय पाकर अच्छा हो जाता है, मगर जुबान का लगा हुआ जख्म सदा हरा बना रहता है।

१० उस मनुष्य को देखो, जिसने विद्या और बुद्धि प्राप्त कर ली है। जिसका मन शान्त और पूर्णतः वश में है, धार्मिकता और नेकी उसका दर्शन करने के लिए उसके घर मे आती है।
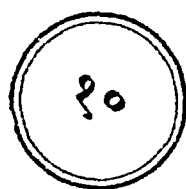
सदाचार

१. जिस मनुष्य का आचरण पवित्र है, सभी उसकी इज़्ज़त करते हैं, इसलिए सदाचार को प्राणों से भी बढ़ कर समझना चाहिए।*

२. अपने आचरण की खूब देख-रेख रक्खो; क्योंकि तुम जहाँ चाहो खोजो, सदाचार से बढ़ कर पक्का दोस्त कहीं नहीं पा सकते।

३. सदाचार सम्मानित परिवार को प्रकट करता

---

* वरं विन्ध्याटव्यामनशनतृषार्तस्य मरणम् ।
न शीलाद् विभ्रंशो भवतु कुलजस्य श्रुतवतः ॥

है। मगर दुराचार मनुष्य को कमीनों में जा बिठाता है।

४. वेद भी अगर विस्मृत हो जायँ तो फिर याद कर लिये जा सकते हैं, मगर सदाचार से यदि एक बार भी मनुष्य स्खलित हो गया तो सदा के लिए अपने स्थान से भ्रष्ट हो जाता है।

५. सुख-समृद्धि ईर्ष्या करने वालों के लिए नहीं है; ठीक इसी तरह गौरव दुराचारियों के लिए नहीं है।

६. दृढ़-प्रतिज्ञ सदाचार से स्खलित नहीं होते; क्योंकि वे जानते हैं कि इस प्रकार के स्खलन से कितनी आपत्तियाँ आती हैं।

७. मनुष्य-समाज में सदाचारी पुरुष का सम्मान होता है; लेकिन जो लोग सन्मार्ग से बहक जाते हैं, बदनामी और बेइज्जती ही उन्हें नसीब होती है।

गिरिते गिरि परिबो भलो, भलो पकरिबो नाग।
अग्नि माँहि जरिबो भलो, बुरो शील को त्याग॥

८. सदाचार† सुख-सम्पत्ति का बीज बोता है; मगर दुष्ट-प्रवृत्ति असीम आपत्तियों की जननी है।

९. वाहियात और गन्दे शब्द भूल कर भी शरीफ आदमी की ज़ुबान से नहीं निकलेंगे।

१०. मूर्खों को और जो चाहो तुम सिखा सकते हो, मगर सदा सन्मार्ग पर चलना वे कभी नहीं सीख सकते।

---

† जहाँ सुमति तहँ सम्पति नाना।
जहाँ कुमति तहँ विपति-निधाना॥

—तुलसीदास।

पराई स्त्री की इच्छा न करना

१. जिन लोगों की नजर धन और धर्म पर रहती है, वे परायी स्त्री को चाहने की मूर्खता नहीं करते।

२. जो लोग धर्म से गिर गये हैं, उनमें उस मनुष्य से बढ़कर मूर्ख और कोई नहीं है कि जो पड़ोसी की ड्योढ़ी पर खड़ा होता है।

३. निस्सन्देह वे लोग मौत के मुंह में हैं कि जो

सन्देह न करने वाले मित्र के घर पर हमला करते हैं।

४. मनुष्य कितना ही बड़ा क्यों न हो, मगर उसका बड़प्पन किस काम का, जब कि वह व्यभिचार से पैदा हुई लज्जा का ज़रा भी ख़याल न करके पर-स्त्री गमन करता है ?*

५. जो पुरुष अपने पड़ोसी की स्त्री को गले लगाता है, इसलिए कि वह उस तक पहुँच सकता है; उसका नाम सदा के लिए कलङ्कित हुआ समझो।

६. व्यभिचारी को इन चार चीज़ों से कभी छुटकारा नहीं मिलता—घृणा, पाप भय और कलङ्क।

७. सद्गृहस्थ वही कि जो अपने पड़ोसी की स्त्री के सौन्दर्य और लावण्य की परवा नहीं करता।

---

* पर नारी पैनी छुरी, मत कोई लावो अङ्ग।
रावण के दश सिर गये, पर नारी के सङ्ग॥
—कबीर

८. शाबास है उसकी मर्दानगी को कि जो पराई स्त्री पर नज़र नहीं डालता! वह केवल नेक और धर्मात्मा ही नहीं, वह सन्त है।

९. पृथ्वी पर की सब नियामतों का हक़दार कौन है? वही कि जो परायी स्त्री को बाहु-पाश में नहीं लेता।

१०. तुम कोई भी अपराध और दूसरा कैसा भी पाप क्यों न करो, मगर तुम्हारे हक़ में यही बेहतर है कि तुम अपने पड़ोसी की स्त्री की इच्छा न करो।

क्षमा

१. धरती* उन लोगों को भी आश्रय देती है कि जो उसे खोदते हैं—इसी तरह तुम भी उन लोगों की बातें सहन करो, जो तुम्हें सताते हैं; क्योंकि बड़प्पन इसीमें है ।

२. दूसरे लोग तुम्हें जो हानि पहुँचायें, उसके लिए तुम सदा उन्हे क्षमा कर दो; और अगर तुम

---

* एक हिन्दी कवि ने सन्तों की उपमा फलदार वृक्षों से देते हुए कहा है—

'ये इनते पाहन हनें, वे उतते फल देत ।'

उसे भुला दे सको, तो यह और भी अच्छा है।

३. अतिथि-सत्कार से इन्कार करना ही सबसे अधिक ग़रीबी की बात है, और मूर्खों की बेहूदगी को सहन करना ही सबसे बड़ी बहादुरी है।

४. यदि तुम सदा ही गौरवमय बनना चाहते हो, तो सब के प्रति क्षमामय व्यवहार करो।

५. जो लोग बुराई का बदला लेते हैं, बुद्धिमान उनकी इज्जत नहीं करते; मगर जो अपने दुश्मनों को माफ कर देते हैं, वे स्वर्ण की तरह बहुमूल्य समझे जाते हैं।

६. बदला लेने की ख़ुशी तो सिर्फ एक ही दिन रहती है; मगर जो पुरुष क्षमा कर देता है, उसका गौरव सदा स्थिर रहता है।

७. नुकसान चाहे कितना ही बड़ा क्यों न उठाना पड़ा हो, मगर ख़ूबी इसीमें है कि मनुष्य उसे मन में न लाय और बदला लेने के विचार से दूर रहे।

८. घमण्ड में चूर हो कर जिन्होंने तुम्हें हानि पहुँचाई है, उन्हे अपनी भलमन्साहत से विजय कर लो ।

९. संसार-त्यागी पुरुषों से भी बढ़ कर संत वह है जो अपनी निन्दा करने वालों की कटुवाणी को सहन कर लेता है ।*

१०. भूखे रह कर तपश्चर्या करने वाले निःसन्देह महान् हैं, मगर उनका दर्जा उन लोगों के बाद ही है, जो अपनी नन्दा करने वालों को क्षमा कर देते हैं।

---

* कबीर तो यहाँ तक कह गये हैं—

निन्दक नियरे राखिये, आँगन कुटी छवाय।
बिन पानी साबुन बिना, निर्मल करे सुभाय ॥

ईर्ष्या न करना

१. ईर्ष्या के विचारों को अपने मन में न आने दो; क्योंकि ईर्ष्या से रहित होना धर्माचरण का एक अंग है।

२. सब प्रकार की ईर्ष्या से रहित स्वभाव के समान दूसरी और कोई बड़ी नियामत नहीं है।

३. जो मनुष्य धन या धर्म की परवाह नहीं करता, वही अपने पड़ोसी की समृद्धि पर डाह करता है।

४. बुद्धिमान लोग ईर्ष्या की वजह से दूसरों को हानि नहीं पहुँचाते; क्योंकि उससे जो ना-

इयाँ पैदा होती हैं, उन्हें वे जानते हैं ।

५. ईर्ष्या करने वाले के लिए ईर्ष्या ही काफ़ी बला है; क्योंकि उसके दुश्मन उसे छोड़ भी दें तो भी उसकी ईर्ष्या ही उसका सर्वनाश कर देगी ।

६. जो मनुष्य दूसरों को देते हुए नहीं देख सकता, उसका कुटुम्ब रोटी और कपड़ों तक के लिए मारा-मारा फिरेगा और नष्ट हो जायगा ।

७. लक्ष्मी ईर्ष्या करने वाले के पास नहीं रह सकती; वह उसको अपनी बड़ी बहन * के हवाले करके चली जायगी ।

८. दुष्टा ईर्ष्या दरिद्रता दानवी को बुलाती है और मनुष्य को नर्क के द्वार तक ले जाती है ।

९. ईर्ष्या करने वालों की समृद्धि और उदार-चेता पुरुषों की कंगाली, ये दोनो ही एकसमान आश्चर्यजनक हैं ।

१०. न तो ईर्ष्या से कभी कोई फला-फूला, न उदार-चेता पुरुष उस अवस्था से कभी वञ्चित ही हुआ ।

---

* दरिद्रता
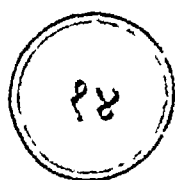
निर्लोभता

१. जो पुरुष सन्मार्ग को छोड़ कर दूसरे की सम्पत्ति को लेना चाहता है, उसकी दुष्टता बढ़ती जायगी और उसका परिवार क्षीण हो जायगा।

२. जो पुरुष बुराई से विमुख रहते हैं, वे लोभ नहीं करते और दुष्कर्मों की ओर ही प्रवृत्त होते हैं।

३. देखो; जो मनुष्य अन्य प्रकार के सुखों को चाहते हैं, वे छोटे-मोटे सुखों का लोभ नहीं करते और न कोई बुरा काम ही करते हैं।

४. जिन्होंने अपनी इन्द्रियों को वश में कर लिया है और जिनके विचार उदार हैं, वे यह कह कर दूसरों की चीजों की कामना नहीं करते—ओहो, हमें इसकी जरूरत है।

५. वह बुद्धिमान और समझदार मन किस काम का, जो लालच में फँस जाता है और वाहियात काम करने को तैयार होता है।

६. वे लोग भी जो सुयश के भूखे हैं और सीधी राह पर चलते हैं, नष्ट हो जायँगे, यदि धन के फेर में पड़ कर कोई कुचक्र रचेंगे।

७. लालच द्वारा एकत्र किये हुए धन की कामना मत करो, क्योंकि भोगने के समय उसका फल तीखा होगा।

८. यदि तुम चाहते हो कि तुम्हारी सम्पत्ति कम न हो, तो तुम अपने पड़ोसी के धन-वैभव को ग्रसने की कामना मत करो।

९. जो बुद्धिमान मनुष्य न्याय की बात को समझता है और दूसरे की चीजों को लेना नहीं चाहता, लक्ष्मी उसकी श्रेष्ठता को जानती

है और उसे ढूँढती हुई उसके घर तक जाती है।

१०. दूरदर्शिता-हीन लालच नाश का कारण होता है; मगर महत्व, जो कहता है—मैं नहीं चाहता, सर्व-विजयी होता है

चुग़ली न खाना

१. जो मनुष्य सदा बुराई ही करता है और नेकी का कभी नाम भी नहीं लेता, उसको भी प्रसन्नता होती है, जब कोई कहता है--'देखो ! यह आदमी किसी की चुग़ली नहीं खाता।'

२. नेकी से विमुख हो जाना और बदी करना निःसन्देह बुरा है, मगर सामने हँस कर बोलना और पीठ-पीछे निन्दा करना उससे भी बुरा है।

३. झूठ और निन्दा के द्वारा जीवन व्यतीत

करने से तो फौरन ही मर जाना बेहतर है; क्योंकि इस तरह मर जाने से नेकी का फल मिलता है।)

४. पीठ-पीछे किसी की निन्दा न करो, चाहे उसने तुम्हारे मुँह पर ही तुम्हें गाली दी हो।

५. मुँह से कोई कितनी ही नेकी की बातें करे, मगर उसकी चुगलखोर जुबान उसके हृदय की नीचता को प्रकट कर ही देती है।

६. अगर तुम दूसरे की निन्दा करोगे तो वह तुम्हारे दोषों को खोज कर उनमें से बुरे से बुरे दोषों को प्रकट कर देगा।

७. जो मधुर वचन बोलना और मित्रता करना नहीं जानते, वे फूट का बीज बोते हैं और मित्रों को एक दूसरे से जुदा कर देते हैं।

८. जो लोग अपने मित्रों के दोषों की खुले-आम चर्चा करते हैं, वे अपने दुश्मनों के दोषों को भला किस तरह छोड़ेंगे?

९. पृथ्वी निन्दा करने वाले के पदाघात को, सब्र के साथ, अपनी छाती पर किस तरह

सहन करती है ? क्या वही अपना पिण्ड छुड़ाने की ग़रज़ से धर्म की ओर बार-बार ताकती है ?

१०. यदि मनुष्य अपने दोषों की विवेचना उसी तरह करे, जिस तरह वह अपने दुश्मनों के दोषों की करता है, तो क्या बुराई कभी उसे छू सकती है ?

पाप कर्मों से भय

१. दुष्ट लोग उस मूर्खता से नहीं डरते, जिसे पाप कहते हैं, मगर लायक लोग उससे सदा दूर भागते हैं।

२. बुराई से बुराई पैदा होती है, इसलिए आग से भी बढ़कर बुराई से डरना चाहिए।

३. कहते हैं, सबसे बड़ी बुद्धिमानी यही है कि दुश्मन को भी नुकसान पहुँचाने से परहेज किया जाय।

४. भूल से भी दूसरे के सर्वनाश का विचार

न करो; क्योंकि न्याय उसके विनाश की युक्ति सोचता है, जो दूसरे के साथ बुराई करना चाहता है।

५. मैं ग़रीब हूँ, ऐसा कह कर किसी को पाप-कर्म में लिप्त न होना चाहिए; क्योंकि ऐसा करने से वह और भी कङ्गाल हो जायगा।

६. जो मनुष्य आपत्तियों द्वारा दुःखित होना नहीं चाहता, उसे दूसरों को हानि पहुँचाने से बचना चाहिए।

७. दूसरे सब तरह के शत्रुओं से बचाव हो सकता है, मगर पाप-कर्मों का कभी विनाश नहीं होता—वे पापी का पीछा करके उसको नष्ट किये बिना नहीं छोड़ते।

८. जिस तरह छाया मनुष्य को कभी नहीं छोड़ती, बल्कि जहाँ जहाँ वह जाता है उसके पीछे-पीछे लगी रहती है, बस ठीक इसी तरह, पाप-कर्म पापी का पीछा करते हैं और अन्त में उसका सर्वनाश कर डालते हैं।

९. यदि किसी को अपने से प्रेम है तो उसे

पाप की ओर जरा भी न झुकना चाहिए।

१०. उसे आपत्तियों से सदा सुरक्षित समझो, जो अनुचित कर्म करने के लिए सन्मार्ग को नहीं छोड़ता।
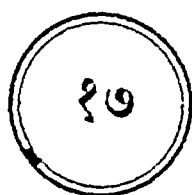
परोपकार

१. महान पुरुष जो उपकार करते हैं, उसका बदला नहीं चाहते। भला, संसार जल बरसाने वाले बादलों का बदला किस तरह चुका सकता है ?

२. योग्य पुरुष अपने हाथों मेहनत करके जो धन जमा करते हैं, वह सब दूसरों ही के लिए होता है।

३. हार्दिक उपकार से बढ़कर न तो कोई चीज इस संसार में मिल सकती है और न स्वर्ग में।

४. जिसे उचित-अनुचित का विचार है, वही वास्तव में जीवित है; पर जो योग्य-अयोग्य का खयाल नहीं रखता, उसकी गिनती मुर्दों में की जायगी।

५. लबालब भरे हुए गाँव के तालाब को देखो, जो मनुष्य सृष्टि से प्रेम करता है, उसकी सम्पत्ति उसी तालाब के समान है।

६. दिलदार आदमी का वैभव गाँव के बीचों-बीच उगे हुए और फलों से लदे हुए वृक्ष के समान है।

७. उदार मनुष्य के हाथ का धन उस वृक्ष के समान है, जो औषधियों का सामान देता है और सदा हरा बना रहता है।

८. देखो, जिन लोगों को उचित और योग्य बातों का ज्ञान है, वे बुरे दिन आने पर भी दूसरों का उपकार करने से नहीं चूकते।

९. परोपकारी पुरुष उसी समय अपने को गरीब समझता है, जब कि वह सहायता माँगने वालों की इच्छा पूर्ण करने में असमर्थ होता है।

२०. यदि परोपकार करने के फलस्वरूप सर्व-
नाश उपस्थित हो, तो गुलामी में फँसने के लिए
आत्म-विक्रय करके भी उसको सम्पादन करना
उचित है। *

---

* परोपकाराय फलन्ति वृक्षाः ।
परोपकाराय वहन्ति नद्यः ॥
परोपकाराय दुहन्ति गावः ।
परोपकारार्थमिदं शरीरम् ॥
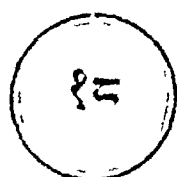
दान

१. ग़रीबों को देना ही दान है; और सब तरह का देना उधार देने के समान है।

२. दान लेना बुरा है, चाहे उससे स्वर्ग ही क्यों न मिलता हो। और दान देने वाले के लिए चाहे स्वर्ग का द्वार ही क्यों न बन्द हो जाय, फिर भी दान देना धर्म है।

३. 'हमारे पास नहीं है'—ऐसा कहे बिना दान देने वाला पुरुष ही केवल कुलीन होता है।

४. (याचक के ओंठों पर सन्तोष-जनित हँसी

की रेखा देखे बिना दानी का दिल खुश नहीं होता ।)

५. आत्म-जयी की विजयों में से सर्वश्रेष्ठ जय है भूख को जय करना । मगर उसकी विजय से भी बढ़ कर उस मनुष्य की विजय है, जो भूख को शान्त करता है ।

६. ग़रीबों के पेट की ज्वाला को शान्त करना— यही तरीक़ा है, जिससे अमीरों को खास अपने लिए धन जमा कर रखना चाहिए ।

७. जो मनुष्य अपनी रोटी दूसरों के साथ बाँट कर खाता है, उसको भूख की भयानक बीमारी कभी स्पर्श नहीं करती ।

८. वे संग-दिल लोग जो जमा कर-कर के अपने धन की बरबादी करते हैं, क्या उन्होंने कभी दूसरों को दान करने की खुशी का मज़ा नहीं चक्खा है ?

९. भीख माँगने से भी बढ़ कर अप्रिय उस

कंजूस का जमा किया हुआ खाना है, जो अकेला बैठ कर खाता है।)

१०. मौत से बढ़ कर कड़वी चीज और कोई नहीं है; मगर मौत भी उस वक़्त मीठी लगती है, जब किसी को दान करने की सामर्थ्य नहीं रहती।
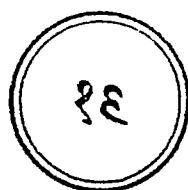
कीर्ति

१. गरीबों को दान दो और कीर्ति कमाओ; मनुष्य के लिए इससे बढ़ कर लाभ और किसी मे नहीं है।

२. प्रशंसा करने वाले की जुबान पर सदा उन लोगो का नाम रहता है कि जो गरीबों को दान देते हैं।

३. दुनिया में और सब चीज़ें तो नष्ट हो जाती हैं; मगर अतुल कीर्ति सदा बनी रहती है।

४. देखो; जिस मनुष्य ने दिगन्तव्यापी स्थायी

ही बढ़ी-चढ़ी क्यों न रही हो, धीरे-धीरे नष्ट हो जायगी।

१०. वही लोग जीते हैं, जो निष्कलंक जीवन व्यतीत करते हैं; और जिनका जीवन कीर्ति-विहीन है, वास्तव में वे ही मुर्दे हैं।

दया

१. दया से लबालब भरा हुआ दिल ही सबसे बड़ी दौलत है, क्योंकि दुनियावी दौलत तो नीच मनुष्यों के पास भी देखी जाती है।

२. ठीक पद्धति से सोच-विचार कर हृदय में दया धारण करो और अगर तुम सब धर्मों से इस बारे में पूछ कर देखोगे तो तुम्हें मालूम होगा कि दया ही एकमात्र मुक्ति का साधन है।

३. जिन लोगों का हृदय दया से अभिभूत है, वे उस अन्धकारमय अप्रिय लोक में प्रवेश नहीं करते।

४. जो मनुष्य सब जीवों पर मेहरबानी और दया दिखलाता है, उसे उन पाप-परिणामों को भोगना नहीं पड़ता, जिन्हें देख कर ही आत्मा काँप उठती है।

५. क्लेश दयालु पुरुष के लिए नहीं है; भरी-पूरी वायु-वेष्टित पृथ्वी इस बात की साक्षी है।

६. अफसोस है उस आदमी पर, जिसने दया-धर्म को त्याग दिया और पाप-कर्म करने लगा है; धर्म का त्याग करने के कारण यद्यपि पिछले जन्मों में उसने भयङ्कर दुःख उठाये हैं, मगर उसने जो नसीहत ली थी उसे भुला दिया है।

७. जिस तरह इहलोक धन वैभव से शून्य पुरुष के लिए नहीं है, ठीक उसी तरह परलोक उन लोगों के लिए नहीं, जिनके पास दया का अभाव है।

८. ऐहिक वैभव से शून्य गरीब लोग तो किसी दिन वृद्धिशाली हो भी सकते हैं मगर वे जो दया-ममता से रहित हैं, सचमुच ही गरीब-कङ्गाल हैं और उनके दिन कभी नहीं फिरते।

९. विकार ग्रस्त मनुष्यों के लिए सत्य का पा लेना जितना सहज है, कठोर दिलवाले पुरुष के लिए नेकी के काम करना भी उतना ही आसान है।

१०. जब तुम किसी दुर्बल को सताने के लिए उद्यत होओ, तो सोचो कि अपने से बलवान मनुष्य के आगे भय से जब तुम कांपोगे तब तुम्हें कैसा लगेगा।
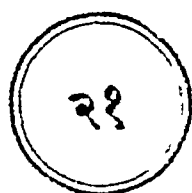
निरामिष

१. भला उसके दिल में तरस कैसे आयगा, जो अपना मांस बढ़ाने की खातिर दूसरों का मांस खाता है ?

२. फिजूल खर्च करने वाले के पास जैसे धन नहीं ठहरता, ठीक इसी तरह मांस खाने वाले के हृदय में दया नहीं रहती।

३. जो मनुष्य मांस चखता है, उसका दिल हथियारबन्द आदमी के दिल की तरह नेकी की ओर राग़िब नहीं होता।

४. जीवों की हत्या करना निःसन्देह क्रूरता है, मगर उनका मांस खाना तो एकदम पाप है।*

५. मांस न खाने ही में जीवन है; अगर तुम खाओगे तो नर्क का द्वार तुम्हें बाहर निकल जाने देने के लिए अपना मुँह नहीं खोलेगा।

६. अगर दुनिया खाने के लिए मांस की कामना न करे, तो उसे बेचने वाला कोई आदमी भी न रहेगा।†

७. अगर मनुष्य दूसरे प्राणियों की पीड़ा और यन्त्रणा को एक बार समझ सके, तो फिर वह कभी मांस खाने की इच्छा न करे।

८. जो लोग माया और मूढ़ता के फन्दे से निकल गये हैं, वे उस मांस को नहीं खाते हैं, जिसमें से जान निकल गई है।

---

* अहिंसा ही दया है और हिंसा करना ही निर्दयता, मगर मांस खाना एकदम पाप है—यह दूसरा [illegible] सकता है।

† यह पद उन लोगों के लिए है, जो कहते हैं—हम खुद हलाल नहीं करते, हमें बना-बनाया मांस मिलता है।

९. जानवरों को मारने और खाने से परहेज़ करना सैकड़ों यज्ञों में वलि अथवा आहुति देने से बढ़कर है।

१०. देखो; जो पुरुष हिंसा नहीं करता और मांस खाने से परहेज़ करता है, सारा संसार हाथ जोड़कर उसका सम्मान करता है।

तप

१. शान्तिपूर्वक दुःख सहन करना और जीव-हिंसा न करना; बस इन्हीं में तपस्या का समस्त सार है।

२. तपस्या तेजस्वी लोगों के लिए ही है; दूसरे लोगों का तप करना बेकार है।

३. तपस्वियों को खिलाने-पिलाने और उनकी सेवा-शुश्रूषा करने के लिए कुछ लोग होने चाहिएँ—क्या इसी विचार से बाकी लोग तप करना भूल गये हैं?

४. यदि तुम अपने शत्रुओं का नाश करना

और उन लोगों को उन्नत बनाना चाहते हो, जो तुम्हें प्यार करते हैं, तो जान रक्खो कि यह शक्ति तप में है।

५. तप समस्त कामनाओं को यथेष्ट रूप से पूर्ण कर देता है। इसीलिए लोग दुनिया में तपस्या के लिए उद्योग करते हैं।

६. जो लोग तपस्या करते हैं, वही तो वास्तव में अपना भला करते हैं। बाक़ी सब तो लालसा के जाल में फँसे हुए हैं और अपने को केवल हानि ही पहुँचाते हैं।

७. सोने को जिस आग में पिघलाते हैं, वह जितनी ही ज्यादा तेज होती है सोने का रंग उतना ही ज्यादा तेज निकलता है, ठीक इसी तरह तपस्वी जितनी ही कड़ी मुसीबतें सहता है उसकी प्रकृति उतनी ही अधिक विशुद्ध हो उठती है।

८. देखो, जिसने अपने पर प्रभुत्व प्राप्त कर लिया है उस पुरुषोत्तम को सभी लोग पूजते हैं।

९. देखो: जिन लोगों ने तप करके शक्ति और

सिद्धि प्राप्त कर ली है, वे मृत्यु को जीतने में भी सफल हो सकते हैं।

१०. अगर दुनिया में हाजतमन्दों की तादाद अधिक है, तो इसका कारण यही है कि वे लोग जो तप करते हैं, थोड़े है, और जो तप नहीं करते है, उनकी संख्या अधिक है।

मक्कारी

१. स्वयं उसके ही शरीर के पंचतत्व मन ही मन उसपर हँसते हैं, जब कि वे मक्कार की चालबाजी और ऐयारी को देखते हैं।

२. शानदार रोबवाला चेहरा किस काम का, जब कि दिल के अन्दर बुराई भरी है और दिल उस बात को जानता है?

३. वह कापुरुष जो तपस्वी की सी तेजस्वी आकृति बनाये रखता है, उस गधे के समान है, जो शेर की खाल पहने हुए घास चरता है।

४. उस मनुष्य को देखो, जो धर्मात्मा के भेष में छिपा रहता है और दुष्कर्म करता है। वह उस बहेलिये के समान है, जो झाड़ी के पीछे छिप कर चिड़ियों को पकड़ता है।

५. मक्कार आदमी दिखावे के लिए पवित्र बनता है और कहता है—'मैंने अपनी इच्छा, आदि इन्द्रिय-लालसाओं को जीत लिया है।' मगर अन्त में वह दुःख भोगेगा और रो-रो कर कहेगा—'मैंने क्या किया ? हाय ! मैंने क्या किया ?'

६. देखो; जो पुरुष वास्तव में अपने दिल से तो किसी चीज को छोड़ता नहीं मगर बाहर त्याग का आडम्बर रचता है और लोगों को ठगता है, उससे बढ़कर कठोरहृदय इस दुनिया में और कोई नहीं है।

७. घुँघची देखने में खूबसूरत होती है, मगर उसके दूसरी तरफ काला दाग होता है। बुरे आदमी भी उसीकी तरह होते हैं। उनका बाहरी रूप तो सुन्दर होता है, किन्तु उनका अन्तःकरण बिलकुल कलुषित होता है।

८. ऐसे बहुत हैं कि जिनका दिल तो नापाक है मगर वे तीर्थस्थानों में स्नान करके घूमते फिरते हैं।

९. तीर सीधा होता है और तम्बूरे में कुछ टेढ़ापन रहता है। इसलिए आदमियों को सूरत से नहीं, बल्कि उनके कामों से पहचानो।

१० दुनिया जिसे बुरा कहती है, अगर तुम उससे बचे हुए हो तो फिर न तुम्हें जटा रखाने की जरूरत है, न सिर मुँडाने की।

सच्चाई

१. सच्चाई क्या है ? जिससे दूसरों को, किसी तरह का, जरा भी नुकसान न पहुँचे, उस बात को बोलना ही सच्चाई है ।

२. उस झूठ में भी सच्चाई की खासियत है, जिसके फलस्वरूप सरासर नेकी ही होती हो ।

३. जिस बात को तुम्हारा मन जानता है कि वह झूठ है, उसे कभी मत बोलो, क्योंकि झूठ बोलने में खुद तुम्हारी अन्तरात्मा ही तुम्हें जलायगी।

४. देखो: जिस मनुष्य का हृदय झूठ से पाक है, वह सबके दिलों पर हुकूमत करता है ।

५. जिसका मन सत्य में निमग्न है, वह पुरुष तपस्वी से भी महान् और दानी से भी श्रेष्ठ है।

६. मनुष्य के लिए इससे बढ़ कर सुयश और कोई नहीं है कि लोगों में उसकी प्रसिद्धि हो कि वह झूठ बोलना जानता ही नहीं। ऐसा पुरुष अपने शरीर को कष्ट दिये बिना ही सब तरह की नियामतों को पा जाता है।

७. झूठ न बोलना, झूठ न बोलना—यदि मनुष्य इस धर्म का पालन कर सके तो उसे दूसरे धर्मों का पालन करने की जरूरत नहीं है।❀

८. शरीर की स्वच्छता का सम्बन्ध तो जल से है, मगर मन की पवित्रता सत्य-भाषण से ही सिद्ध होती है।†

❀ Both should be of the same kind—यह मूल का शब्दशः अनुवाद है। ओ० वी० वी० एस० अय्यर ने उसका अर्थ इस तरह किया है—यदि मनुष्य बिना झूठ बोले रह सके तो उसके लिए और सब धर्म अनावश्यक हैं।

† अद्भिर्गात्राणि शुध्यन्ति मनः सत्येन शुध्यति।

मनु।

९. योग्य पुरुष और सब तरह की रोशनी को रोशनी नहीं कहते, केवल सत्य की ज्योति को ही वे सच्चा प्रकाश मानते हैं।

१०. मैंने इस संसार में बहुत सी चीजें देखी हैं; मगर मैंने जो चीजें देखी हैं, उनमें सत्य से बढ़ कर उच्च और कोई चीज नहीं है।

क्रोध न करना

१. जिसमें चोट पहुँचाने की शक्ति है उसीमें सहनशीलता का होना समझा जा सकता है। जिसमें शक्ति ही नहीं है, वह क्षमा करे या न करे, उससे किसी का क्या बिगड़ता है ?

२. अगर तुममें हानि पहुँचाने की शक्ति न भी हो, तब भी गुस्सा करना बुरा है। मगर जब तुम मे शक्ति हो, तब तो गुस्से से बढ़ कर खराब बात और कोई नहीं है।

३. तुम्हें नुकसान पहुँचाने वाला कोई भी हो, गुस्से

को दूर कर दो; क्योंकि गुस्से से सैकड़ों बुराइयाँ पैदा होती है।❀

४. क्रोध हँसी की हत्या करता है और खुशी को नष्ट कर देता है। क्या क्रोध से बढ़ कर मनुष्य का और भी कोई भयानक शत्रु है?

५. अगर तुम अपना भला चाहते हो, तो, गुस्से से दूर रहो; क्योंकि यदि तुम उससे दूर न रहोगे तो वह तुम्हें आ दबोचेगा और तुम्हारा सर्वनाश कर डालेगा।

६. अग्नि उसीको जलाती है, जो उसके पास जाता है; मगर क्रोधाग्नि सारे कुटुम्ब को जला डालती है।

७. जो गुस्से को इस तरह दिल में रखता है, मानो वह कोई बहुमूल्य पदार्थ हो, वह उस मनुष्य

❀ गीता में क्रोध-जनित, परिणामों का इस प्रकार वर्णन है—

क्रोधाद्भवति सम्मोहः सम्मोहात्स्मृतिविभ्रमः।
स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति॥

के समान है, जो जोर से जमीन पर अपना हाथ दे मारता है; इस आदमी के हाथ में चोट लगे बिना नहीं रह सकती और पहले आदमी का सर्वनाश अवश्यम्भावी है।

८. तुम्हें जो नुकसान पहुँचा है वह तुम्हें भड़कते हुए अङ्गारों की तरह जलाता भी हो तब भी बेहतर है कि तुम क्रोध से दूर रहो।

९. मनुष्य की समस्त कामनायें तुरन्त ही पूर्ण हो जाया करें, यदि वह अपने मन से क्रोध को दूर कर दे।

१०. जो गुस्से के मारे आपे से बाहर है, वह मुर्दे के समान है; मगर जिसने क्रोध को त्याग दिया है, वह सन्तों के समान है।

अहिंसा

१. अहिंसा सब धर्मों में श्रेष्ठ है। हिंसा के पीछे हर तरह का पाप लगा रहता है।

२. हाजतमन्द के साथ अपनी रोटी बाँट कर खाना और हिंसा से दूर रहना, यह सब पैगम्बरों के समस्त उपदेशों में श्रेष्ठतम उपदेश है।

३. अहिंसा सब धर्मों में श्रेष्ठ धर्म है। सच्चाई का दर्जा उसके बाद है।*

---

* पीछे कह चुके हैं इस्लाम से बढ़कर और कोई धर्म नहीं है (परि० २८, पद १०)। पर यहाँ सच को दूसरा दर्जा बताया है। मनुष्य मानिक होकर तब किसी धर्म का

४. नेक रास्ता कौन सा है ? यह वही मार्ग है, जिसमें इस बात का ख़याल रक्खा जाता है कि छोटे से छोटे जानवर को भी मरने से किस तरह बचाया जाय।

५. जिन लोगों ने इस पापमय सांसारिक जीवन को त्याग दिया है उन सबमें मुख्य वह पुरुष है, जो हिंसा के पाप से डर कर अहिंसा-मार्ग का अनुसरण करता है

ध्यान करता है तब वही बात उसे सबसे अधिक प्रिय मालूम पड़ती है। इससे कभी-कभी इस प्रकार का विरोधाभास उत्पन्न हो जाता है। यह मानव-स्वभाव का एक चमत्कार है।

लालाजी ने अपना विचार इस प्रकार प्रकट किया है—

Ahinsa is the highest religion but there is no religion higher than truth. Ahinsa and truth must be reconciled, in fact in essence they are one and the same.

भाई परमानन्द, सभापति हिन्दू-महासभा

==]

६. धन्य है वह पुरुष, जिसने अहिंसा-व्रत धारण किया है। मौत जो सब जीवों को खा जाती है, उसके दिनों पर हमला नहीं करती।

७. तुम्हारी जान पर भी आ बने तब भी किसी की प्यारी जान मत लो।

८. लोग कह सकते हैं कि बलि देने से बहुत सारी नियामतें मिलती हैं, मगर पाक दिलवालों की दृष्टि में वे नियामतें जो हिंसा करने से मिलती हैं, जघन्य और घृणास्पद हैं।

९. जिन लोगों का जीवन हत्या पर निर्भर है, समझदार लोगों की दृष्टि में, वे मुर्दाखोरों के समान हैं।

१०. देखो; वह आदमी जिसका सड़ा हुआ शरीर पीपदार जख्मों से भरा हुआ है, वह पुराने जमानेमें खून बहाने वाला रहा होगा, ऐसा बुद्धिमान लोग कहते हैं।

सांसारिक चीज़ों की निस्सारता

१. इस मोह से बढ़कर मूर्खता की और कोई बात नहीं है कि जिसके कारण अस्थायी पदार्थों को मनुष्य स्थिर और नित्य समझ बैठता है।

२. धनोपार्जन करना तमाशा देखने के लिए आए हुई भीड़ के समान है और धन का क्षय उस भीड़ के तितर-बितर हो जाने के समान है—अर्थात्, धन क्षणस्थायी है।

३. समृद्धि क्षणस्थायी है। यदि तुम समृद्धिशाली हो गये हो तो ऐसे काम करने में देर न करो, जिनसे स्थायी लाभ पहुँच सकता है।

४.

४. समय देखने में भोलाभाला और बेगुनाह मालूम होता है, मगर वास्तव में वह एक आरा है, जो मनुष्य के जीवन को बराबर काट रहा है।

५. नेक काम करने में जल्दी करो, ऐसा न हो कि जुबान बन्द हो जाय और हिचकियाँ आने लगें।

६. कल तो एक आदमी था, और आज वह नहीं है। दुनिया में यही बड़े अचरज की बात है।*

७. आदमी को इस बात का तो पता नहीं है कि पल भर के बाद वह जीता भी रहेगा कि नहीं.

---

* 'नासतो विद्यते भावो, नाभावो विद्यते सतः'—गीता का यह मन्तव्य कुछ इसके भिन्न सा दिखाई पड़ता है। बात यह है—गीता ने दिया है एक सूक्ष्म तत्त्व का तात्त्विक निदर्शन और यह है चर्म चक्षुओं से दीखने वाले प्रत्यक्ष का वर्णन।

गीता में मृत्यु को कपड़े बदलने से उपमा दी है और रवीन्द्र बाबू ने इसे बालक के एक स्तन से हटा कर दूसरा स्तन पान कराने के समान कहा है।

मगर उसके ख़यालों को देखो तो वे करोड़ों की संख्या में हैं।

८. पर निकलते ही चिड़िया का बच्चा टूटे हुए अण्डे को छोड़ कर उड़ जाता है। शरीर और आत्मा की पारस्परिक मित्रता का यही नमूना है।

९. मौत नींद के समान है और ज़िन्दगी उस नींद से जगाने के समान है।

१०. क्या आत्मा का अपना कोई ख़ास घर नहीं है, जो वह इस वाहियात शरीर में आश्रय लेता है?

त्याग

१ मनुष्य ने जो चीज छोड़ दी है, उससे पैदा होने वाले दुःख से उसने अपने को मुक्त कर लिया है।*

२. त्याग से अनेकों प्रकार के सुख उत्पन्न होते हैं, इसलिए अगर तुम उन्हें अधिक समय तक भोगना चाहो तो शीघ्र त्याग करो।

---

* वांछित वस्तु को प्राप्त करने की चिन्ता, खो जाने की आशंका और न मिलने से निराशा तथा भोगाधिक्य से जो दुःख होते हैं, उनसे वह बचा हुआ है।

रखना मानों उन बन्धनों में फिर आ फँसना है, जिन्हें मनुष्य एक बार छोड़ चुका है।

५. जो लोग पुनर्जन्म के चक्र को बन्द करना चाहते हैं, उनके लिए यह शरीर भी अनावश्यक है फिर भला अन्य बन्धन कितने अनावश्यक होंगे? *

६. "मैं" और "मेरे" के जो भाव हैं, वे घमण्ड और खुदनुमाई के अतिरिक्त और कुछ नहीं हैं। जो मनुष्य उनका दमन कर लेता है, वह देव-लोक से भी उच्च लोक को प्राप्त होता है।

७. देखो; जो मनुष्य लालच में फँसा हुआ है और उससे निकलना नहीं चाहता, उसे दुःख आ कर घेर लेगा और फिर मुक्त न करेगा।

८. जिन लोगों ने सब कुछ त्याग दिया है, वे मुक्ति के मार्ग में हैं मगर बाकी सब मोह-जाल में फँसे हुए हैं।

९. (ज्योंही लोभ-मोह दूर हो जाते हैं, त्योंही सब पुनर्जन्म बन्द हो जाता है। जो मनुष्य इन बन्धनों

---

* माया, मोह और अविद्या।

को नहीं काटते, वे भ्रम-जाल में फँसे रहते हैं।)

१०. उसी ईश्वर की शरण में जाओ कि जिसने सब मोहों को छिन्न-भिन्न कर दिया है। और उसी-का आश्रय लो, जिससे सब बन्धन टूट जायँ।

सत्य का आस्वादन

१. मिथ्या और अनित्य पदार्थों को सत्य समझने के भ्रम से ही मनुष्य को दुःखमय जीवन भोगना पड़ता है ।

२. देखो, जो मनुष्य भ्रमात्मक भावों से मुक्त है और जिसकी दृष्टि स्वच्छ है, उसके लिए दुःख और अन्धकार का अन्त हो जाता है और आनन्द उसे प्राप्त होता है ।

३. जिसने अनिश्चित बातों से अपने को मुक्त कर लिया है और जिसने सत्य को पा लिया

है, उसके लिए स्वर्ग पृथ्वी से भी अधिक समीप है।

४. मनुष्य जैसी उच्च योनि को प्राप्त कर लेने से भी कोई लाभ नहीं, अगर आत्मा ने सत्य का आस्वादन नहीं किया।

५. कोई भी भाव हो, उसमें सत्य को झूठ से पृथक् कर देना ही मेधा का कर्त्तव्य है।

६. वह पुरुष धन्य है, जिसने गम्भीरतापूर्वक स्वाध्याय किया है और सत्य को पा लिया है; वह ऐसे रास्ते से चलेगा, जिससे फिर उसे इस दुनिया में आना न पड़ेगा।

७. निःसन्देह जिन लोगों ने ध्यान और धारणा के द्वारा सत्य को पा लिया है, उन्हें भावी जन्मों का ख्याल करने की ज़रूरत नहीं है।*

८. जन्मों की जननी अविद्या से छुटकारा पाना और सच्चिदानन्द को प्राप्त करने की चेष्टा करना ही बुद्धिमानी है।

---

* अथवा—जिन्होंने चिन्तन और मनन के द्वारा सत्य को पा लिया है उनके लिए पुनर्जन्म नहीं है।

९. देखो, जो पुरुष मुक्ति के साधनों को जानता है और सब मोहों के जीतने का प्रयत्न करता है, भविष्य में आने वाले सब दुःख उससे दूर हो जाते हैं।

१०. काम, क्रोध और मोह ज्यों ज्यों मनुष्य को छोड़ते जाते हैं, दुःख भी उनका अनुसरण करके धीरे-धीरे नष्ट हो जाते हैं।
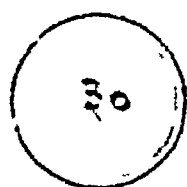
कामना का दमन

१. कामना एक बीज है, जो प्रत्येक आत्मा को सर्वदा ही अनवरत - कभी न चूकने वाले—जन्मों की फसल प्रदान करता है।

२. यदि तुम्हें किसी बात की कामना करना ही है, तो जन्मों के चक्र से छुटकारा पाने की कामना करो, और वह छुटकारा तभी मिलेगा, जब तुम कामना को जीतने की कामना करोगे।

३. निष्कामना से बढ़ कर यहाँ-मर्त्यलोक में-दूसरी और कोई सम्पत्ति नहीं है और तुम स्वर्ग

में भी जाओ तो भी तुम्हें ऐसा खज़ाना न मिल सकेगा, जो उसका मुक़ाबला करे।

४. कामना से मुक्त होने के सिवाय पवित्रता और कुछ नहीं है। और यह मुक्ति पूर्ण सत्य की इच्छा करने से ही मिलती है।

५. वही लोग मुक्त हैं, जिन्होंने अपनी इच्छाओं को जीत लिया है; बाकी लोग देखने में स्वतन्त्र मालूम पड़ते हैं, मगर वास्तव में वे बन्धन से जकड़े हुए हैं।

६. यदि तुम नेकी को चाहते हो, तो कामना से दूर रहो; क्योंकि कामना जाल और निराशा मात्र है।

७. यदि कोई मनुष्य अपनी समस्त वासनाओं को सर्वथा त्याग दे, तो जिस राह से आने की वह आज्ञा देता है, मुक्ति उधर ही से आकर उससे मिलती है।

८. जो किसी बात की कामना नहीं करता, उसको कोई दुःख नहीं होता; मगर जो चीज़ों

को पाने के लिए मारा-मारा फिरता है, उसपर आफत पर आफत पड़ती है।)

९. यहाँ भी मनुष्य को स्थायी सुख प्राप्त हो सकता है, बशर्ते कि वह अपनी इच्छा का ध्वंस कर डाले, जो कि सबसे बड़ी आपत्ति है।

१०. इच्छा कभी तृप्त नहीं होती; किन्तु यदि कोई मनुष्य इसको त्याग दे, तो वह उसी दम सम्पूर्णता को प्राप्त कर लेता है।

भवितव्यता—होनी

१. मनुष्य दृढ़-प्रतिज्ञ हो जाता है जब, भाग्य-लक्ष्मी उसपर प्रसन्न हो कर कृपा करना चाहती है। मगर मनुष्य में शिथिलता आ जाती है, जब भाग्य-लक्ष्मी उसे छोड़ने को ठानती है।

२. दुर्भाग्य शक्तियों को मन्द कर देता है, मगर जब भाग्य लक्ष्मी कृपा दिखाना चाहती है तो वह पहले बुद्धि को विस्तृत कर देती है।

३. ज्ञान और सब तरह की चतुरता से क्या लाभ? अन्दर जो आत्मा है उसका ही प्रभाव सर्वोपरि है।

४. दुनिया में दो चीजें हैं, जो एक दूसरे से बिलकुल नहीं मिलतीं। धन सम्पत्ति एक चीज है और साधुता तथा पवित्रता बिलकुल दूसरी चीज। *

५. जब किसी के दिन बुरे होते हैं तो भलाई भी बुराई में बदल जाती है, मगर जब दिन फिरते हैं तो बुरी चीजें भी भली हो जाती हैं।

६. भवितव्यता जिस बात को नहीं चाहती, उसे तुम अत्यन्त चेष्टा करने पर भी नहीं रख सकते; और जो चीजें तुम्हारी हैं—तुम्हारे भाग्य में बदी हैं—उन्हें तुम इधर-उधर फेंक भी दो, फिर भी वे तुम्हारे पास से नहीं जावेंगी।

७. उस महान शासक की आज्ञा के विपरीत करोड़पति भी अपनी सम्पत्ति का जरा भी उपभोग नहीं कर सकता।

८. गरीब लोग निःसन्देह अपने दिल को त्याग

---

* सुई के नकुए में से ऊँट का निकल जाना तो सरल है, पर धनिक पुरुष का स्वर्ग में प्रवेश करना असम्भव है।

— बाइबल

की ओर झुकाना चाहते हैं; किन्तु भवितव्यता उनके उन दुःखों के लिए रख छोड़ती है, जो उन्हें भाग्य में बदे हैं।†

९. अपना भला देख कर जो मनुष्य खुश होता है, उसे आपत्ति आने पर क्यों दुखी होना चाहिये ?

१०. होनी से बढ़कर बलवान और कौन है ? क्योंकि उसका शिकार जिस वक्त उसे पराजित करने की तरकीब सोचता है, उसी वक्त वह पेशक़दमी करके उसे नीचा दिखाती है।

---

† 'मजे हमने उठाये हैं मुसीबत कौन झेलेगा ?' जो सुख मानता है, उसे दुःख भी भोगना ही होगा। सुख दुःख तो एक दूसरे का पीछा करने वाले द्वन्द्व हैं।

अर्थ

राजा के गुण

१. जिसके पास सेना, आबादी, धन, मन्त्री, सहायक मित्र और दुर्ग—ये छः चीजें सम्पूर्ण रूप से हैं, वह राजाओं में शेर है।

२. राजा में साहस, उदारता, बुद्धिमानी और कार्य-शक्ति—इन बातों का कभी अभाव नहीं होना चाहिए।

३. जो पुरुष दुनिया में हुकूमत करने के लिए पैदा हुए हैं, उनमें चौकसी, जानकारी और निश्चय-बुद्धि—ये तीनों खूबियाँ कभी नहीं छोड़तीं।

४. राजा को धर्म करने में कभी न चूकना

चाहिए, और अधर्म को दूर करना चाहिए। उसे ईर्ष्या-पूर्वक अपनी इज़्ज़त की रक्षा करनी चाहिए, मगर वीरता के नियमों के विरुद्ध दुराचरण कभी न करना चाहिए।

५. राजा को इस बात का ज्ञान रखना चाहिए कि अपने राज्य के साधनों की विक्रांति और वृद्धि किस तरह की जाय और ख़ज़ाने को किस प्रकार पूर्ण किया जाय; धन की रक्षा किस तरह की जाय और किस प्रकार, समुचित रूप से, उसका ख़र्च किया जाय।

६. यदि समस्त प्रजा की पहुँच राजा तक हो और राजा कभी कठोर वचन न बोले, तो उसका राज्य सबसे ऊपर रहेगा।

७. देखो, जो राजा ख़ुशी के साथ दान दे सकता है और प्रेम के साथ शासन करता है, उसका नाम सारी दुनिया में फैल जायगा।

८. धन्य है वह राजा, जो निष्पक्षपात-पूर्वक न्याय करता है और अपनी प्रजा की रक्षा करता है। वह मनुष्यों में देवता समझा जायगा।

९. देखो, जिस राजा में कानों को अप्रिय लगने वाले वचनों को सहन करने का गुण है, संसार निरन्तर उसकी छत्र-छाया में रहेगा ।

१०. जो राजा उदार, दयालु और न्यायनिष्ठ है और जो अपनी प्रजा की प्रेम-पूर्वक सेवा करता है, वह राजाओं के गण में ज्योति-स्वरूप है ।

शिक्षा

१. प्राप्त करने योग्य जो ज्ञान है, उसे सम्पूर्ण रूप से प्राप्त करना चाहिए और उसे प्राप्त करने के पश्चात् उसके अनुसार व्यवहार करना चाहिए।

२. मानव-जाति की जीती-जागती दो आँखें हैं। एक को अंक कहते हैं और दूसरी को अक्षर।

३. शिक्षित लोग ही आँख वाले कहलाये जा सकते हैं, अशिक्षितों के सिर में तो केवल दो गड्ढे होते हैं।

४. विज्ञान जहाँ कहीं भी जाता है अपने साथ

आनन्द ले जाता है, लेकिन जब वह विदा होता है तो पीछे दुःख छोड़ जाता है ।

५. चाहे तुम्हें गुरु या शिक्षक के सामने इतना ही अपमानित और नीचा बनना पड़े, जितना कि एक भिक्षुक को धनवान् के समक्ष बनना पड़ता है, फिर भी तुम विद्या सीखो; मनुष्यों में अधम वही लोग हैं, जो विद्या सीखने में इन्कार करते हैं ।

६. सोते को तुम जितना ही खोदोगे, उतना ही अधिक पानी निकलेगा; ठीक इसी तरह तुम जितना ही अधिक सीखोगे, उतनी ही तुम्हारी विद्या में वृद्धि होगी ।

७. विद्वान् के लिए सभी जगह उसका घर है और सभी जगह उसका स्वदेश है । फिर लोग मरने के दिन तक विद्या-प्राप्त करते रहने में लापर्वाही क्यों करते हैं ?

८. मनुष्य ने एक जन्म में जो विद्या प्राप्त कर ली है, वह उसे समस्त आगामी जन्मों में भी उच्च और उन्नत बना देगी ।

९. विद्वान देखता है कि जो विद्या उसे आनन्द देती है, वह संसार को भी आनन्दप्रद होती है और इसीलिए वह विद्या को और भी अधिक चाहता है।

२० विद्या मनुष्य के लिए एक दोष-त्रुटि-हीन और अविनाशी निधि है। उसके सामने दूसरी तरह की दौलत कुछ भी नहीं है।
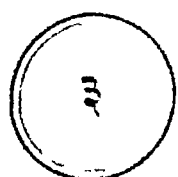
बुद्धिमानों के उपदेश को सुनना

१. सबसे अधिक बहुमूल्य खजानों में कानों का खजाना है। निःसन्देह वह सब प्रकार की सम्पत्ति से श्रेष्ठ है।

२. जब कानों को देने के लिए भोजन न रहेगा तो पेट के लिए भी कुछ भोजन दे दिया जायगा।*

३. देखो, जिन लोगों ने बहुत से उपदेशों को सुना है, वे पृथ्वी पर देवतास्वरूप हैं।

४. यद्यपि किसी मनुष्य में शिक्षा न हो, फिर

*अर्थात् जब तक सुनने के लिए उपदेश हो तब तक भोजन का ख्याल ही न करना चाहिए।

भी उसे उपदेश सुनने दो; क्योंकि जब उसके ऊपर मुसीबत पड़ेगी, तब उनसे ही उसे कुछ सान्त्वना मिलेगी।

५. धर्मात्मा लोगों की नसीहत एक मजबूत लाठी की तरह है; क्योंकि जो उसके अनुसार काम करते हैं, उन्हें वह गिरने से बचाती है।

६. अच्छे शब्दों को ध्यानपूर्वक सुनो, चाहे वे थोड़े से ही क्यों न हों; क्योंकि वे थोड़े से शब्द भी तुम्हारी शान में मुनासिब तरक्की करेंगे।

७. देखो, जिस पुरुष ने खूब मनन किया है और बुद्धिमानों के वचनों को सुन-सुनकर अनेक उपदेशों को जमा कर लिया है; वह भूल से भी कभी निरर्थक वाहियात बातें नहीं करता।

८. सुन सकने पर भी वह कान बहरा है, जिसे उपदेशों के सुनने का अभ्यास नहीं है।

९. जिन लोगों ने बुद्धिमानों के चातुरी-भरे शब्दों को नहीं सुना है, उनके लिए वक्तृता की नम्रता प्राप्त करना कठिन है।

१०. जो लोग जबान से तो चखते हैं मगर कानों

के स्वारस्य से अनभिज्ञ हैं, वे चाहे जियें या मरें-
इससे दुनिया का क्या आता-जाता है ?

४
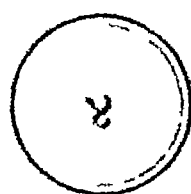
बुद्धि

१. बुद्धि समस्त अचानक आक्रमणों को रोकने वाला कवच है। यह ऐसा दुर्ग है, जिसे दुश्मन भी घेर कर नहीं जीत सकते।

२. यह बुद्धि ही है जो इन्द्रियों को इधर-उधर भटकाने से रोकती है, उन्हें बुराई से दूर रखती है और नेकी की ओर प्रेरित करती है।

३. समझदार बुद्धि का काम है कि हर एक बात में सत्य को असत्य से निकालकर अलग कर दे, फिर उस बात का कहने वाला कोई भी क्यों न हो।

४. बुद्धिमान मनुष्य जो कुछ कहता है, इस तरह से कहता है कि उसे सब कोई समझ सकें; और, दूसरों के मुँह से निकले हुए शब्दों के आन्तरिक भाव को वह समझ लेता है।

५. बुद्धिमान पुरुष सारी दुनिया के साथ मिलनसारी से पेश आता है और उसका मिज़ाज हमेशा एक-सा रहता है। उसकी मित्रता न तो पहले बेहद बढ़ जाती है, और न एकदम घट जाती है।

६. यह भी एक बुद्धिमानी का काम है कि मनुष्य लोक रीति के अनुसार व्यवहार करे।*

---

* यद्यपि शुद्धं लोक-विरुद्धं नाचरणीयम् नाचरणीयम्। साधारण स्थिति में साधारण लोगों के लिए यह उचित हो सकता है, और प्रायः लोग इसी नियम का अनुसरण करते हैं। किन्तु जिनका आत्मा बलवती है, जिनके हृदय में जोश है, और जो दुनिया के पीछे न चलकर उसे आदर्श की ओर ले जाना चाहते हैं, वे आदर्शों का प्रचार कर आगे बढ़ते हैं। इस से बनी हुई दुनियादारी से चिढ़ कर ही कोई हिन्दी कवि कह गये हैं—

लीक लीक गाड़ी चले, लीकहि चले कपूत।
लीक छाँड़ि तीनों चलें, शायर सिंह सपूत॥

७. समझदार आदमी पहले ही से जान जाता है कि क्या होने वाला है, मगर मूर्ख आगे आने वाली बात को नहीं देख सकता।

८. खतरे की जगह धड़ाधड़ दौड़ पड़ना बेवकूफी है; बुद्धिमानों का यह भी एक काम है कि जिससे डरना ही चाहिए, उससे डरें। ×

९. जो दूरन्देश आदमी हरएक मौक़े के लिए पहले ही से तैयार रहता है, वह उस वार से बचा रहेगा, जो कँपकँपी पैदा करता है। †

१०. जिसके पास बुद्धि है, उसके पास सब-कुछ है; मगर मूर्ख के पास सब-कुछ होने पर भी कुछ नहीं है। ‡

× Fools rush in where angels fear to tread.

† दूरदर्शी पुरुष पहले ही से आने वाली आपत्ति का निराकरण कर देता है।

‡ 'यस्य बुद्धिः बलं तस्य, निर्बुद्धेस्तु कुतो बलम्।'
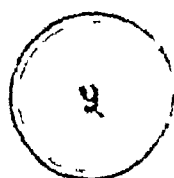
दोषों को दूर करना

१. जो मनुष्य दर्प, क्रोध और विषय-लालसाओं से रहित है, उसमें एक प्रकार का गौरव रहता है, जो उसके सौभाग्य को भूषित करता है।

२. कञ्जूसी, अहङ्कार और बेहद ऐयाशी—ये राजा में विशेष दोष होते हैं।*

---

* यदि राजा में ये दोष होते हैं तो उसके लिए ये विशेष रूप से भयंकर सिद्ध होते हैं और उसके पतन का कारण बन जाते हैं। पिछले दो दोष तो मानो सम्पत्ति की स्वाभाविक सन्तान हैं। बाहर शत्रुओं की तरह इन अति प्रबल आन्तरिक शत्रुओं से बुद्धिमान और ऐश्वर्यशाली राजा को सदा सावधान रहना चाहिए।

३. देखो, जिन लोगों को अपनी कीर्ति प्यारी है वे, अपने दोष को राई के समान छोटा होने पर भी ताड़ के वृक्ष के बराबर समझते हैं।

४. अपने को बुराइयों से बचाने में सदा सचेत रहो, क्योंकि वे ऐसी दुश्मन हैं, जो तुम्हारा सर्वनाश कर डालेंगी।

५. जो आदमी अचानक आ पड़ने वाली मुसीबत के लिए पहले ही से तैयार रहता है, वह ठीक उसी तरह नष्ट हो जायगा, जिस तरह आग के अँगारे के सामने फूस का ढेर।

६. राजा यदि पहले अपने दोषों को सुधार कर तब दूसरों के दोषों को देखे तो फिर कौन सी बुराई उसको छू सकती है?

७. खेद है उस कंजूस पर, जो व्यय करने की जगह व्यय नहीं करता; उसकी दौलत बुरी तरह बरबाद होगी।

८. कंजूसी, मक्खीचूस होना ऐसा दुर्गुण नहीं है, जिसकी गिनती दूसरी बुराइयों के साथ की

जा सके; उसका दर्जा ही बिलकुल अलग है।*

९. किसी वक्त और किसी बात पर फूल कर आपे से बाहर मत हो जाओ; और ऐसे कामों में हाथ न डालो, जिनसे तुम्हें कुछ लाभ न हो।

१०. तुम्हें जिन बातों का शौक़ है, उनका पता अगर तुम दुश्मनों को न चलने दोगे तो तुम्हारे दुश्मनों की साज़िशें बेकार साबित होंगी।†

---

* अर्थात् कृपणता साधारण नहीं अत्यन्त दुर्गुण है।

† दुश्मन को यदि मालूम हो जाय कि राजा की ये निर्बलतायें हैं अथवा उसे इन बातों में प्रेम है, तो वह आसानी से राजा को जाल में फँसा सकता है।
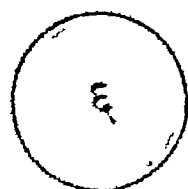
योग्य पुरुषों की मित्रता

१. जो लोग धर्म करते-करते बुड्ढे हो गये हैं, उनकी तुम इज्जत करो, उनकी दोस्ती हासिल करने की कोशिश करो।

२. तुम जिन मुश्किलों में फँसे हुए हो, उनको जो लोग दूर कर सकते हैं और आने वाली बलाओं से तुम्हें बचा सकते हैं, उत्साह-पूर्वक उनकी मित्रता को प्राप्त करने की चेष्टा करो।

३. अगर किसी को योग्य पुरुषों की प्रीति और भक्ति मिल जाय, तो यह महान से महान सौभाग्य की बात है।

४. जो लोग तुमसे अधिक योग्यता वाले हैं वे यदि तुम्हारे मित्र बन गये हैं, तो तुमने ऐसी शक्ति प्राप्त कर ली है कि जिसके सामने अन्य सब शक्तियाँ तुच्छ हैं।

५. चूंकि मन्त्री ही राजा की आँखें हैं, इसलिए उनके चुनने में बहुत ही समझदारी और होशियारी से काम लेना चाहिए।

६. जो लोग सुयोग्य पुरुषों के साथ मित्रता का व्यवहार रख सकते हैं, उनके बैरी उनका कुछ बिगाड़ न सकेंगे।

७. जिस आदमी को ऐसे लोगों की मित्रता का गौरव प्राप्त है कि जो उसे डाट-फटकार सकते हैं, उसे नुकसान पहुँचाने वाला कौन है? *

८. जो राजा ऐसे पुरुषों की सहायता पर निर्भर

* नरेश प्रायः खुशामद-पसन्द होते हैं और ऐश्वर्य-शाली मनुष्य के लिए खुशामदियों की कमी भी नहीं रहती। ऐसी अवस्था में स्पष्ट बात कह कर सन्मार्ग दिखाने वाला मनुष्य सौभाग्य से ही मिलता है। राजस्थान के नरेश यदि इसपर ध्यान दें तो वे बहुत सी बुराइयों से बच रहें।

नहीं रहता कि जो वक्त पड़ने पर उसको झिड़क सके, दुश्मनों के न रहने पर भी उसका नाश होना अवश्यम्भावी है

९. जिनके पास मूल धन नहीं है, उनको लाभ नहीं मिल सकता; ठीक इसी तरह पायदारी उन लोगों को नसीब नहीं होती कि जो बुद्धिमानों की अविचल सहायता पर निर्भर नहीं रहते।

१०. ढेर के ढेर लोगों को दुश्मन बना लेना मूर्खता है: किन्तु नेक लोगों की दोस्ती को छोड़ना उससे भी बहुत ज्यादा बुरा है।
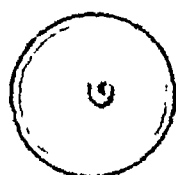
कुसङ्ग से दूर रहना

१. लायक लोग बुरी सोहबत से डरते हैं, मगर छोटी तबीयत के आदमी बुरे लोगों में इस तरह मिलते-जुलते हैं, मानों वे उनके ही कुटुम्ब वाले हैं।

२. पानी का गुण बदल जाता है—वह जैसी ज़मीन पर पड़ता है वैसा ही गुण उसका हो जाता है—इसी तरह, जैसी सङ्गत होती है, उसी तरह का असर पड़ता है।

३. आदमी की बुद्धि का सम्बन्ध तो दिमाग से है,

मगर उसकी नेकनामी का दारोमदार उन लोगों पर है, जिनकी सोहबत में वह रहता है

४. मालूम ऐसा होता है कि मनुष्य का स्वभाव उसके मनमें रहता है, किन्तु वास्तव में उसका निवासस्थान उस गोष्ठी में है कि जिसकी वह सोहबत करता है।

५. मन की पवित्रता और कर्म की पवित्रता आदमी की सगत की पवित्रता पर निर्भर है।

६. पाकदिल आदमी की औलाद नेक होगी; और जिनकी सगत अच्छी है, वे हर तरह से फूलते-फलते हैं।

७. मनकी पवित्रता आदमी के लिए खजाना है, और अच्छी संगत उसे हर तरह का गौरव प्रदान करती है।

८. बुद्धिमान यद्यपि स्वयमेव सर्व-गुण-सम्पन्न होते हैं, फिर भी वे पवित्र पुरुषों के सुसंग को शक्ति का स्तम्भ समझते हैं।

९. धर्म मनुष्य को स्वर्ग ले जाता है और सत्-

रूपों की संगत मनुष्य को धर्माचरण में रत करती है।

१०. अच्छी संगत से बढ़ कर आदमी का सहायक और कोई नहीं है। और कोई भी चीज इतनी हानि नहीं पहुँचाती, जितनी कि बुरी संगत।
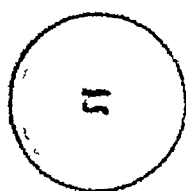
करता उसकी सारी मेहनत अकारथ जायगी, उसकी मदद करने के लिए चाहे कितने ही आदमी क्यों न आयें।

जिसके साथ तुम उपकार करना चाहते हो, उसके स्वभाव का यदि तुम ख़याल न रक्खोगे, तो तुम भलाई करने में भी भूल कर सकते हो।

१०. तुम जो काम करना चाहते हो, वह सर्वथा अनिन्द्य होना चाहिए; क्योंकि दुनिया में उसकी बेइज़्ज़ती होती है, जो अपने अयोग्य काम करने पर उतारू हो जाता है।
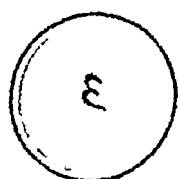
नहीं, बशर्ते कि खाली करनेवाली नाली ज्यादा चौड़ी न हो।)

९. जो आदमी अपने धन का हिसाब नहीं रखता और न अपनी सामर्थ्य को देख कर काम करता है, वह देखने में खुशहाल भले ही मालूम हो, मगर वह इस तरह नष्ट होगा कि उसका नामोनिशान तक न रहेगा।

१०. जो आदमी अपने धन का ख्याल न रख कर खुले हाथों उसे लुटाता है, उसकी सम्पत्ति शीघ्र ही समाप्त हो जायगी।

४. अगर तुम मुनासिब मौके और उचित साधनों को चुनो, तो तुम सारी दुनिया को जीत सकते हो ।

५. जिनके हृदय में विजय-कामना है, वे चुपचाप मौका देखते रहते हैं; वे न तो गड़बड़ाते हैं, और न जल्दबाजी करते हैं ।

६. चकनाचूर कर देने वाली चोट लगाने से पहले मेंढा एक दफे पीछे हट जाता है; कर्मवीर की निष्कर्मण्यता भी ठीक उसी तरह की होती है ।

७. बुद्धिमान लोग उसी वक्त अपने गुस्से को प्रकट नहीं कर देते; वे उसको दिल ही दिल में रखते हैं, और अवसर की ताक में रहते हैं ।

८. अपने दुश्मन के सामने झुक जाओ, जबतक उसकी अवनति का दिन नहीं आता । जब वह दिन आयगा, तो तुम आसानी से [illegible] सिर के बल नीचे फेंक दे सकोगे ।

९. (जब तुम्हें ऐसा [illegible], तो [illegible] क्रियाओं का [illegible] ।

फिर चाहे वह असम्भव ही क्यों न हो ।*

२४. जब समय तुम्हारे विरुद्ध हो, तो मारल की तरह निष्क्रियता का बहाना करो; लेकिन जब वक्त आये तो मारल की तरह, तेजी के साथ, झपट कर हमला करो ।

* [illegible] ।

हो और वहाँ डटे रहो, तो तुम्हारे दुश्मनों की सब युक्तियाँ निष्फल सिद्ध होंगी।

५. मगर पानी के अन्दर सर्व शक्तिशाली है, किन्तु बाहर निकलने पर वह दुश्मनों के हाथ का खिलौना है।

६. मज़बूत पहियों वाला रथ समुद्र के ऊपर नहीं दौड़ता है, और न सागर-गामी जहाज़ खुश्क ज़मीन पर तैरता है।

७. देखो, जो राजा सब कुछ पहले ही से तय कर रखता है और समुचित स्थान पर आक्रमण करता है, उसको अपने बल के अतिरिक्त दूसरे सहायकों की आवश्यकता नहीं है।

८. जिसकी सेना निर्बल है, वह राजा यदि रण-क्षेत्र के समुचित भाग में जाकर खड़ा हो, तो उसके शत्रुओं की सारी चेष्टायें व्यर्थ सिद्ध होंगी।

९. अगर रक्षा का सामान और अन्य साधन न भी हों, तो भी किसी जाति को उसके देश में हराना मुश्किल है।

१०. देखो, उस मस्त हाथी ने, पलक मारे बिना,

भाले-बरदारों की सारी फौज का मुकाबला किया; लेकिन जब वह दलदली ज़मीन में फँस जायगा, तो एक गीदड़ भी उसके ऊपर फतह पा लेगा।

परीक्षा करके विश्वस्त मनुष्यों को चुनना

१. धर्म, अर्थ, काम और प्राणों का भय— ये चार कसौटियाँ, हैं जिनपर कस कर मनुष्य को चुनना चाहिए।

२. जो अच्छे कुल में उत्पन्न हुआ है, जो दोषों से रहित है, और जो बेइज़्ज़ती से डरता है, वही मनुष्य तुम्हारे लिए है।

३. जब तुम परीक्षा करोगे तो, देखोगे कि अत्यन्त ज्ञानवान और शुद्ध मन वाले लोग भी हर तरह की अज्ञानता से सर्वथा रहित न निकलेंगे।

मनुष्य की भलाइयों को देखो और फिर

उसकी बुराइयों पर नजर डालो; इनमें जो अधिक हैं, बस समझ लो कि वैसा ही उसका स्वभाव है ।)

५. क्या तुम यह जानना चाहते हो कि अमुक मनुष्य उदार-चित्त है या क्षुद्र-हृदय? याद रक्खो कि आचार-व्यवहार चरित्र की कसौटी है ।

६. सावधान ! उन लोगों का विश्वास देख-भाल कर करना कि जिनके आगे-पीछे कोई नहीं है; क्योंकि उन लोगों के दिल ममता-हीन और लज्जा-रहित होंगे ।

७. यदि तुम किसी मूर्ख को अपना विश्वास-पात्र सलाहकार बनाना चाहते हो, सिर्फ इस-लिए कि तुम उसे प्यार करते हो, तो याद रक्खो कि वह तुम्हें अनन्त मूर्खताओं में ला पटकेगा ।

८. देखो, जो आदमी परीक्षा किये बिना ही दूसरे मनुष्य का विश्वास करता है, वह अपनी सन्तति के लिए अनेक आपत्तियों का बीज बो रहा है ।

९. परीक्षा किये बिना किसी का विश्वास न करो; और अपने आदमियों की परीक्षा लेने के बाद हर एक को उसके लायक़ काम दो ।

१०. अनजाने मनुष्य पर विश्वास करना और जाने हुए योग्य पुरुष पर संदेह करना—ये दोनों ही बातें एकसमान अनन्त आपत्तियों का कारण होता हैं ।

कि जिसमें दया, बुद्धि और दृत निश्चय है, अथवा जो लालच से आज़ाद है।

४. बहुत-से आदमी ऐसे हैं, जो सब तरह की परीक्षाओं में उत्तीर्ण हो जाते हैं, मगर फिर भी ठीक कर्त्तव्य-पालन के वक़्त बदल जाते हैं।

५. आदमियों के सुचतुर-ज्ञान और उनकी शान्त कार्य-कारिणी शक्ति का ख़याल करके ही उनके हाथों में काम सौंपना चाहिए; इसलिए नहीं कि वे तुमसे प्रेम करते हैं।

६. सुचतुर मनुष्य को चुनकर उसे वही काम दो, जिसके वह योग्य है; फिर जब काम करने का ठीक मौक़ा आय, तो उससे काम शुरू करवा दो।

७. पहले नौकर की शक्ति और उसके योग्य काम का खूब विचार कर लो और तब उसकी जिम्मेवारी पर वह काम उसके हाथ में सौंप दो।

८. जब तुम निश्चय कर चुको कि यह आदमी इस पद के योग्य है, तब तुम उसे उस पद को सुशोभित करने के क़ाबिल बना दो।

९. देखो, जो उस मनुष्य के मित्रता-सूचक व्यवहार

पर स्पष्ट होता है कि जो अपने कार्य में दक्ष है, भाग्य-लक्ष्मी उससे फिर जायगी।

राजा को चाहिए कि वह हर रोज़ अपने काम की देखभाल करता रहे; क्योंकि जबतक किसी देश के अहलकारों में ख़राबी पैदा न होगी, तबतक उस देश पर कोई आपत्ति न आयगी।

न्याय-शासन

१. ख़ूब ग़ौर करो और किसी तरफ मत झुको, निष्पक्ष होकर क़ानूनदाँ लोगों की राय लो—न्याय करने का यही तरीक़ा है।

२. संसार जीवन-दान के लिए बादलों की ओर देखता है; ठीक इसी तरह न्याय के लि लोग राज-दण्ड की ओर निहारते है।

३. राज-दण्ड ही ब्रह्म-विद्या और धर्म का मुख्य संरक्षक है।

४. देखो, जो राजा अपने राज्य की प्रजा पर प्रेम-

करने पर उन्हें दण्ड दे, तो यह उसका दोष नहीं है—यह उसका कर्त्तव्य है।

१०. दुष्टों को मृत्यु-दण्ड देना अनाज के खेत से घास को बाहर निकालने के समान है।

उन्हें दूर नहीं करता, उसका राज्यत्व दिन-दिन क्षीण होता जायगा।

४. शोक है उस विचारहीन राजा पर, जो न्याय-मार्ग से चल-विचल हो जाता है; वह अपना राज्य और धन सब-कुछ खो बैठेगा।

५. निस्सन्देह ये अत्याचार-दलित दुःख से कराहते हुए लोगों के आँसू ही हैं, जो राजा की समृद्धि को धीरे-धीरे बहा ले जाते हैं।

६. न्याय-शासन-द्वारा ही राजा को यश मिलता है और अन्याय-शासन उसकी कीर्ति को कलंकित करता है।

७. वर्षा-हीन आकाश के तले पृथ्वी की जो दशा होती है, ठीक वही दशा निर्दयी राजा के राज्य में प्रजा की होती है।

८. अत्याचारी राजा के शासन में ग़रीबों से ज्यादा दुर्गति अमीरों की होती है।

९. अगर राजा न्याय और धर्म के मार्ग से बहक जायगा, तो स्वर्ग से ठीक समय पर वर्षा की बौछारें आना बन्द हो जायँगी।

१०. यदि राजा न्याय-पूर्वक शासन नहीं करेगा, तो गाय के थन सूख जायँगे और ब्राह्मण * अपनी विद्या को भूल जायँगे।

---

* [illegible]

गुप्तचर

१. राजा को यह ध्यान में रखना चाहिए कि राज-नीति-विद्या और गुप्त-चर—ये दो आँखें हैं, जिनसे वह देखता है।

२. राजा का काम है कि कभी-कभी प्रत्येक मनुष्य की प्रत्येक बात की हर रोज़ खबर रक्खे।

३. जो राजा गुप्तचरों और दूतों के द्वारा अपने चारों तरफ होनेवाली घटनाओं की खबर नहीं रखता है, उसके लिए दिग्विजय नहीं है।

४. राजा को चाहिए कि अपने राज्य के कर्मचा-रियो, अपने बन्धु-बान्धवों और शत्रुओ की

इस बात का ध्यान रक्खो कि कोई दूत उसी काम में लगे हुए दूसरे दूतों को न जानने पाय और जब तीन दूतों की सूचनायें एक दूसरे से मिलती हों, तब उन्हें सच्चा मान सकते हो।

१०। अपने खुफिया पुलिस के अफसरों को खुलेआम इनाम मत दो, क्योंकि यदि तुम ऐसा करोगे तो अपने ही भेद को खोल दोगे।

४. पौधे को सींचने के लिए जो पानी डाला जाता है, उसीसे उसके फूल के सौन्दर्य का पता लग जाता है; ठीक इसी तरह आदमी का उत्साह उसकी भाग्य-शीलता का पैमाना है।

५. जोशीले आदमी कभी शिकस्त खाकर पीछे नहीं हटते; हाथी के जिस्म में जब दूर तक तीर घुस जाता है, तब वह और भी मजबूती के साथ ज़मीन पर अपने पैरों को जमाता है।

६. अनन्त उत्साह—बस यही तो शक्ति है! जिनमें उत्साह नहीं है, वे और कुछ नहीं, केवल काठ के पुतले हैं; अन्तर केवल इतना ही है कि उनका शरीर मनुष्यों का-सा है।

७. आलस्य में दरिद्रता का वास है, मगर जो आलस्य नहीं करता उसके परिश्रम में कमला बसती हैं।

८. टालमटूल, विस्मृति, सुस्ती और निद्रा—ये चार उन लोगों के खुशी मनाने के बजड़े हैं कि जिनके भाग्य में नष्ट होना बदा है।

९. अगर भाग्य किसी को धोखा दे जाय तो

इसमें कोई लज्जा नहीं, लेकिन वह अगर जान-बूझ कर, काम से जी चुरा कर, हाथ पर हाथ रखकर बैठा रहे, तो यह बड़े ही शर्म की बात है

१०. जो राजा आलस्य को नहीं जानता, वह त्रिविक्रम—वामन के पैरों से नापी हुई समस्त पृथ्वी को अपनी छत्रछाया के नीचे ले आयगा।
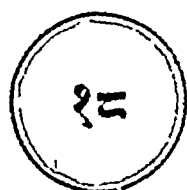
मुसीबत के वक्त बेखौफ़ी

१. जब तुमपर कोई मुसीबत आ पड़े, तो तुम हँसते हुए उसका मुक़ाबला करो। क्योंकि मनुष्य को आपत्ति का सामना करने के लिए सहायता देने में मुस्क्यान से बढ़कर और कोई चीज़ नहीं है।

२. अनिश्चितमना पुरुष भी मन को एकाग्र करके जब सामना करने को खड़ा होता है, तो आपत्तियों का लहराता हुआ सागर भी दब कर बैठ जाता है।

३. आपत्तियों को जो आपत्ति नहीं समझते, वे

आपत्तियों को ही आपत्ति में डालकर वापस भेज देते हैं

४. भैंसे की तरह हरएक मुसीबत का सामना करने के लिये जो जी तोड़ कर कोशिश करने को तय्यार है, उसके सामने विघ्न-बाधा आयेंगे, मगर निराश होकर, अपना-सा मुँह लेकर, वापस चले जायँगे।

५. आपत्ति की एक समस्त सेना को अपने विरुद्ध सुसज्जित खड़ा देखकर भी जिसका मन बैठ नहीं जाता, बाधाओं को उसके पास आने में खुद बाधा होती है।

६. सौभाग्य के समय जो खुशी नहीं मनाते, क्या वे कभी इस क़िस्म की शिकायत करते फिरेंगे कि 'हाय, हम नष्ट हो गये ?'

७. बुद्धिमान लोग जानते हैं कि यह जिस्म तो मुसीबतों का निशाना है—तख्त-ए-मश्क़ है; और इसलिए जब उन पर कोई आफ़त आ पड़ती है, तो वे उसकी कुछ पर्वाह नहीं करते।

८. देखो, जो आदमी ऐशो-आराम को पसन्द नहीं

करता और जो जानता है कि आपत्तियाँ भी सृष्टि-नियम के अन्तर्गत हैं, वह बाधा पड़ने पर कभी परेशान नहीं होता।

९. सफलता के समय जो हर्ष में मग्न नहीं होता, असफलता के समय उसे दुःख नहीं भोगना पड़ता।

१०. देखो, जो मनुष्य परिश्रम के दुःख, दबाव और आवेग को सच्चा सुख समझता है, उसके दुश्मन भी उसकी प्रशंसा करते हैं।
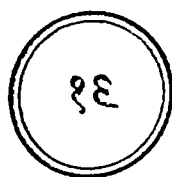
मन्त्री

१. देखो, जो मनुष्य महत्वपूर्ण उद्योगों को सफलतापूर्वक सम्पादन करने के मार्गों और साधनों को जानता है और उनका आरम्भ करने के समुचित समय को पहचानता है, सलाह देने के लिए वही योग्य पुरुष है।

२. स्वाध्याय, दृढ़-निश्चय, पौरुष, कुलीनता और प्रजा की भलाई के निमित्त सप्रेम चेष्टा—ये मन्त्री के पाँच गुण हैं।

३. जिसमें दुश्मनों के अन्दर फूट डालने की शक्ति है, जो वर्तमान मित्रता के सम्बन्धों को

बनाये रख सकता है और जो लोग दुश्मन बन गये हैं उनको फिर से मिलाने की सामर्थ्य जिस-में है—बस, वही योग्य मंत्री है।

४. उचित उद्योगों को पसन्द करने और उनको कार्य-रूप में परिणत करने के साधनों को चुनने की लियाक़त तथा सम्मति देते समय निश्च-यात्मक स्पष्टता—ये परामर्शदाता के आवश्यक गुण हैं।

५. देखो, जो नियमों को जानता है और जो ज्ञान में भरपूर है, जो समझ-बूझ कर बात करता है और जो मौक़े-महल को पहचानता है—बस, वही मन्त्री तुम्हारे लायक़ है।

६. जो पुस्तकों के ज्ञान द्वारा अपनी स्वाभाविक बुद्धि को अभिवृद्धि कर लेते हैं, उनके लिए कौनसी बात इतनी मुश्किल है, जो उनकी समझ में न आ सके?

७. पुस्तक-ज्ञान में यद्यपि तुम सुदक्ष हो, फिर भी तुम्हें चाहिए कि तुम अनुभव-जन्य ज्ञान प्राप्त करो और उसके अनुसार व्यवहार करो।

८. सम्भव है कि राजा मूर्ख हो और पग-पग पर उसके काम में अड़चनें डाले, मगर फिर भी मन्त्री का कर्तव्य है कि वह सदा वही राह उसे दिखावे कि जो फायदेमन्द, ठीक और मुनासिब हो।

९. देखो, जो मन्त्री मंत्रणा-गृह में बैठ कर अपने राजा का सर्वनाश करने की युक्ति सोचता है, वह सात करोड़ दुश्मनों से भी अधिक भयङ्कर है।

१०. अनिश्चयी पुरुष सोच-विचार कर ठीक तरकीब निकाल भी लें, मगर उसपर अमल करते समय वे डगमगायेंगे और अपने मन्सूबों को कभी पूरा न कर सकेंगे।

वाक्-पटुता

१ वाक्-शक्ति निःसन्देह एक नियामत है; क्योंकि यह अन्य नियामतों का अंश नहीं बल्कि स्वयमेव एक निराली नियामत है।

२. जीवन और मृत्यु * जिह्वा के वश में हैं; इसलिए ध्यान रक्खो कि तुम्हारे मुँह से कोई अनुचित बात न निकले।

३. देखो, जो वक्तृता मित्रों को और भी घनिष्ठता के सूत्र में आबद्ध करती है और दुश्मनों को

---

* भलाई-बुराई; सम्पत्ति-विपत्ति।

भी अपनी ओर आकर्षित करती है, बस वही यथार्थ वक्तृता है।

४. हरएक बात को ठीक तरह से तौल कर देखो, और फिर जो उचित हो वही बोलो; धर्म की वृद्धि और लाभ की दृष्टि से इससे बढ़कर उपयोगी बात तुम्हारे हक़ में और कोई नहीं है।

५. तुम ऐसी वक्तृता दो कि जिसे दूसरी कोई वक्तृता चुप न कर सके।

६. ऐसी वक्तृता देना कि जो श्रोताओं के दिलों को आकर्षित कर ले और दूसरों की वक्तृता के अर्थ को फौरन ही समझ जाना—यह पक्के राजनीतिज्ञ का कर्त्तव्य है।

७. देखो, जो आदमी सुवक्ता है और जो गड़बड़ाना या डरना नहीं जानता, विवाद में उसको हरा देना किसी के लिए सम्भव नहीं है।

८. जिसकी वक्तृता परिमार्जित और विश्वासोत्पादक भाषा से सुसज्जित होती है, सारा संसार उसके इशारे पर नाचेगा।

९. जो लोग अपने मन की बात थोड़े से चुने हुए

शब्दों में कहना नहीं जानते, वास्तव में उन्हीं-
को अधिक बोलने की लत होती है।)

१०] देखो, जो लोग अपने प्राप्त किये हुए ज्ञान को समझा कर दूसरो को नहीं बता सकते, वे उस फूल के समान हैं, जो खिलता मगर सुगन्ध नहीं देता।

शुभाचरण

१. मित्रता द्वारा मनुष्य को सफलता मिलती है; किन्तु आचरण की पवित्रता उसकी प्रत्येक इच्छा को पूर्ण कर देती है।

२. उन कामों से सदा विमुख रहो कि जिनसे न तो सुकीर्ति मिलती है, न लाभ होता है।

३. जो लोग संसार में रह कर उन्नति करना चाहते हैं, उन्हें ऐसे कार्यों से सदा दूर रहना चाहिए, जिनसे कीर्ति में बट्टा लगने की सम्भावना हो।

४. भले आदमी जिन बातों को बुरा बतलाते हैं,

मनुष्यों को चाहिए अपने को जन्म देने वाली माता को बचाने के लिए भी वे उन कामों को न करें।

अधर्म-द्वारा एकत्र की हुई सम्पत्ति की अपेक्षा तो सदाचारी पुरुष की दरिद्रता कहीं अच्छी है।

६. जिन कामों में असफलता अवश्यम्भावी है, उन सब से दूर रहना और बाधा-विघ्नों से डर कर अपने कर्त्तव्य से विचलित न होना—ये दो बुद्धिमानों के मुख्य पथ-प्रदर्शक सिद्धान्त समझे जाते हैं।

७. मनुष्य जिस बात को चाहता है, उसको वह प्राप्त कर सकता है और वह भी उसी तरह से जिस तरह कि वह चाहता है, बशर्ते कि वह अपनी पूरी शक्ति और पूरे दिल से उसको चाहता हो।

८. सूरत देख कर किसी आदमी को हेय मत समझो, क्योंकि दुनिया में ऐसे भी आदमी हैं, जो एक बड़े भारी दौड़ते हुए रथ की धुरी की कीली के समान हैं।

९. लोगों को रुला कर जो सम्पत्ति इकट्ठी की जाती है, वह क्रन्दन-ध्वनि के साथ ही विदा हो जाती है; मगर जो धर्म-द्वारा सञ्चित की जाती है, वह बीच में क्षीण हो जाने पर भी अन्त में खूब फलती-फूलती है।

१०. धोखा देकर दग़ाबाज़ी के साथ धन जमा करना बस ऐसा ही है, जैसा कि मिट्टी के बने हुए कच्चे घड़े में पानी भर कर रखना।
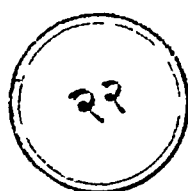
कार्य-सञ्चालन

१. किसी निश्चय पर पहुँचना ही विचार का उद्देश्य है; और जब किसी बात का निश्चय हो गया, तब उसको कार्य मे परिणत करने में देर करना भूल है ।

२. जिन बातो को आराम के साथ फ़ुर्सत से करना चाहिए उनको तो तुम खूब सोच-विचार कर करो; लेकिन जिन बातो पर फ़ौरन ही अमल करने की ज़रूरत है, उनको एक क्षण-भर के लिए भी न उठा रक्खो ।

३. यदि परिस्थिति अनुकूल हो, तो सीधे अपने

लक्ष्य की ओर चलो; किन्तु यदि परिस्थिति अनुकूल न हो तो उस मार्ग का अनुसरण करो, जिसमें सबसे कम बाधा आने की सम्भावना हो।

४. अधूरा काम और अपराजित शत्रु—ये दोनों बिना बुझी आग की चिनगारियों के समान हैं; वे मौका पाकर बढ़ जायँगे और उस ला-पर्वाह आदमी को आ दबोवेंगे।

५. प्रत्येक कार्य को करते समय पाँच बातों का खूब ध्यान रक्खो,—उपस्थित साधन, औज़ार, कार्य का स्वरूप, समुचित समय और कार्य करने के उपयुक्त स्थान।

६. काम करने में कितना परिश्रम पड़ेगा, मार्ग में कितनी बाधायें आयेंगी, और फिर कितने लाभ की आशा है, इन बातों को पहले सोच कर तब किसी काम को हाथ में लो।

७. किसी भी काम में सफलता प्राप्त करने का यही मार्ग है कि जो मनुष्य उस काम में दक्ष है उससे उस काम का रहस्य मालूम कर लेना चाहिए।

८. लोग एक हाथी के द्वारा दूसरे हाथी का फँसाते हैं; ठीक इसी तरह एक काम को दूसरे काम के सम्पादन करने का ज़रिया बना लेना चाहिए।

९. मित्रों को पारितोषिक देने से भी अधिक शीघ्रता के साथ दुश्मनों को शान्त करना चाहिए।

१०. दुर्बलों को सदा खतरे की हालत में नहीं रहना चाहिए, बल्कि जब मौक़ा मिले तब उन्हें बलवान के साथ मित्रता कर लेनी चाहिए।

राज-दूत

१. एक मेहरबान दिल, आला ख़ानदान और राजाओं को खुश करने वाले तरीक़े—ये सब राज-दूतों की ख़ूबियाँ हैं।

२. प्रेम-मय प्रकृति, सुतीक्ष्ण बुद्धि और वाक्-पटुता—ये तीनों बाते राजदूतके लिए अनिवार्य हैं।

३. जो मनुष्य राजाओं के समक्ष अपने स्वामी को लाभ पहुँचाने वाले शब्दो को बोलने का भार अपने सिर लेता है, उसे विद्वानो में विद्वान्—सर्व-श्रेष्ठ विद्वान होना चाहिए।

४. जिसमें बुद्धि और ज्ञान है और जिसका चेहरा शानदार और रोबीला है, उसीको राजदूतत्व के काम पर जाना चाहिए।

५. संक्षिप्त वक्तृता, वाणी की मधुरता और चतुरता-पूर्वक हर तरह की अप्रिय भाषा का निराकरण करना—ये ही साधन हैं, जिनके द्वारा राज-दूत अपने स्वामी को लाभ पहुँचायगा।

६. विद्वत्ता, प्रभावोत्पादक वक्तृता और निर्भीकता तथा किस मौक़े पर क्या करना चाहिए यह बताने वाली सुसंयत प्रत्युत्पन्नमति (हाज़िर-जवाबी)—ये सब राजदूत के आवश्यक गुण हैं।

७. वही सबसे योग्य राजदूत है कि जिसके पास समुचित स्थान और समय को पहचानने वाली आँख है, जो अपने कर्त्तव्य को जानता है और जो बोलने से पहले अपने शब्दों को जाँच लेता है।

८. जो मनुष्य दूतत्व के काम पर भेजा जाय वह दृढ़-प्रतिज्ञ, पवित्र-हृदय और चित्ताकर्षक स्वभाव वाला होना चाहिए।*

---

* पहले सात पदों में ऐसे राजदूतों का वर्णन है, जिनको अपनी ज़िम्मेवारी पर काम करने का अधिकार है।

९. देखो जो दृढ़-प्रतिज्ञ पुरुष अपने मुख से हीन और अयोग्य वचन कभी नहीं निकलने देता, विदेशी दरबारों में राजाओं के पैगाम सुनाने के लिए वही योग्य पुरुष है।

१०. मौत का सामना होने पर भी सच्चा राज-दूत अपने कर्त्तव्य से विचलित नहीं होगा, बल्कि अपने मालिक का काम बनाने की पूरी कोशिश करेगा।

आख़िरी तीन पदों में उन दूतों का वर्णन है, जो राजाओं के पैगाम ले जाने वाले होते हैं।
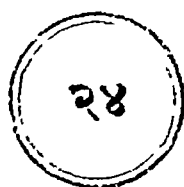
राजाओं के समक्ष कैसा बर्ताव होना चाहिए

१. जो कोई राजाओं के साथ रहना चाहता है, उसको चाहिए कि वह उस आदमी के समान व्यवहार करे, जो आग के सामने बैठ कर तापता है; उसको न तो अति समीप जाना चाहिए, न अति दूर।

२. राजा जिन चीज़ों को चाहता है उनकी लालसा न रखना—यही उसकी स्थायी कृपा प्राप्त करने और उसके द्वारा समृद्धिशाली बनने का मूल-मन्त्र है।

३. यदि तुम राजा की नाराजी में पड़ना नहीं चाहते, तो तुमको चाहिए कि हर तरह के गम्भीर दोषों से सदा पाक साफ रहो, क्योंकि यदि एकबार सन्देह हो गया तो फिर उसे दूर करना असम्भव हो जाता है।

४. बड़े लोगों के सामने काना फूसी न करो और न किसी दूसरे के साथ हँसो या मुस्कराओ, जब कि वे नजदीक हों।

५. छिप कर कोई बात सुनने की कोशिश न करो और जो बात तुम्हें नहीं बताई गई है उसका पता लगाने की चेष्टा भी न करो; जब तुम्हें बताया जाय तभी उस भेद को जानो।

६. राजा का मिजाज इस वक्त कैसा है, इस बात को समझ लो और क्या मौका है इस बात को भी देख लो, तब ऐसे शब्द बोलो कि जिनसे वह प्रसन्न हो।

७. (राजा के सामने उन्हीं बातों का जिक्र करो, जिनसे वह प्रसन्न हो; मगर जिन बातों से कुछ

लाभ नहीं है, जो बातें बेकार हैं. राजा के पूछने पर भी उनका ज़िक्र न करो।*)

८. चूँकि वह नवयुवक है और तुम्हारा सम्बन्धी अथवा रिश्तेदार है इसलिए तुम उसको तुच्छ मत समझो, बल्कि उसके अन्दर जो ज्योति † विराजमान है, उसके सामने भय मानकर रहो।

९. देखो, जिनकी दृष्टि निर्मल और निर्द्वन्द्व है, वे यह समझ कर कि हम राजा के कृपा-पात्र हैं कभी कोई ऐसा काम नहीं करते, जिससे राजा असन्तुष्ट हो।

१०. जो मनुष्य राजा की घनिष्ठता और मित्रता पर भरोसा रख कर अयोग्य काम कर बैठते हैं, वे नष्ट हो जाते हैं।

---

* परिमेल अड़हर कहता है कि उन्हीं बातों का ज़िक्र करो, जो लाभदायक हों और जिनसे राजा प्रसन्न हो।

† मूल ग्रन्थ में जिसका प्रयोग है, उसका यह भी अर्थ हो सकता है—वह दिव्य ज्योति जो राजा के सो जाने पर भी प्रजा की रक्षा करती है।

मुखाकृति से मनोभाव समझना

१. देखो, जो आदमी ज़बान से कहने के पहले ही दिल की बात जान लेता है, वह सारे संसार के लिए भूषण-स्वरूप है।

२. दिल में जो बात है, उसको यकीनी तौर पर मालूम कर लेने वाले मनुष्य को देवता समझो।

३. जो लोग किसी आदमी की सूरत देख कर ही उसकी बात भाँप जाते हैं, चाहे जिस तरह हो, उनको तुम ज़रूर अपना सलाहकार बनाओ।

४. जो लोग बिना कहे ही मन की बात समझ लेते हैं, उनकी सूरत-शक्ल भी वैसी ही हो सकती

है, जैसी कि न समझ सकने वाले लोगों की होती है; मगर उन लोगों का दर्जा ही अलहदा है।

५. ज्ञानेन्द्रियों के मध्य आँख का क्या स्थान हो सकता है, अगर वह एक ही नज़र में दिल की बात को जान नहीं सकती ?

६. जिस तरह बिल्लौरी पत्थर अपना रंग बदल कर पासवाली चीज़ का रंग धारण करता है, ठीक उसी तरह चेहरे का भाव भी बदल जाता है और दिल में जो बात होती है उसीको प्रकट करने लगता है।

७. चेहरे से बढ़ कर भावपूर्ण चीज़ और कौनसी है ? क्योंकि दिल चाहे नाराज़ हो या ख़ुश, सबसे पहले चेहरा ही इस बात को प्रकट करता है।

८. यदि तुम्हे ऐसा आदमी मिल जाय, जो बिना कहे ही दिल की बात समझ सकता हो, तो बस इतना काफ़ी है कि तुम उसकी तरफ एक

नजर देख भर लो; तुम्हारी सब इच्छायें पूर्ण हो जायँगी।

९. यदि ऐसे लोग हों, जो उसके हाव-भाव और तौर-तरीक़ को समझ सकें, तो अकेली आँख ही यह बतला सकती है कि हृदय में घृणा है अथवा प्रेम।

१०. जो लोग अपने को होशियार और कामिल कहते हैं, उनका पैमाना * और कुछ नहीं, केवल उनकी आँखें ही है।

---

* अर्थात्. स्थिति को देखने और दूसरों के दिल की बात को समझने का साधन

श्रोताओं के समक्ष

१.| ऐ शब्दों का मूल्य जानने वाले पवित्र पुरुषो ! पहले अपने श्रोताओं की मानसिक स्थिति को समझ लो और फिर उपस्थित जन-समूह की अवस्था के अनुसार अपनी वक्तृता देना आरम्भ करो ।

२.| बुद्धिमान और विद्वान लोगों की सभा में ही ज्ञान और विद्वत्ता की चर्चा करो; मगर मूर्खों को उनकी मूर्खता का ख़याल रख कर ही जवाब दो ।

३. धन्य है वह आत्म-संयम, जो मनुष्य को बुज़ुर्गों

की सभा में आगे बढ़कर नेतृत्व ग्रहण करने से मना करता है! यह एक ऐसा गुण है, जो अन्य गुणों से भी अधिक समुज्ज्वल है।

४. बुद्धिमान लोगों के सामने असमर्थ और असफल सिद्ध होना धर्म-मार्ग से पतित हो जाने के समान है।

५. विद्वान पुरुष की विद्वत्ता अपने पूर्ण तेज के साथ सुसम्पन्न गुणियों की सभा में ही चमकती है।

६. बुद्धिमान लोगों के सामने उपदेशपूर्ण व्याख्यान देना जीवित पौधों को पानी देने के समान है।

७. ऐ अपनी वक्तृता से विद्वानों को प्रसन्न करने की इच्छा रखने वाले लोगो! देखो, कभी भूल कर भी मूर्खों के सामने व्याख्यान न देना।❀

❀ क्योंकि अयोग्यों को उपदेश देना कीचड़ में अमृत फेंकने के समान है।

८. रणक्षेत्र में खड़े होकर बहादुरी के साथ मौत का सामना करने वाले लोग तो बहुत हैं, मगर ऐसे लोग बहुत ही थोड़े हैं, जो बिना कांपे हुए जनता के सामने रंगमञ्च पर खड़े हो सकें।

९. तुमने जो ज्ञान प्राप्त किया है, उसको विद्वानो के सामने खोल कर रक्खो; और जो बात तुम्हें मालूम नहीं है वह उन लोगों से सीख लो, जो उसमे दक्ष हों।

१०. देखो, जो लोग विद्वानों की सभा में अपनी बात को लोगो के दिल में नहीं बिठा सकते, वे हर तरह का ज्ञान रखने पर भी बिलकुल निकम्मे हैं।

देश

१. वह महान देश है, जो फसल की पैदावार में कभी नहीं चूकता और जो ऋषि-मुनियों तथा धार्मिक धनिकों का निवास-स्थान हो।

२. वही महान् देश है, जो धन की अधिकता से लोगों को अपनी ओर आकर्षित करता है और जिसमें खूब पैदावार होती है फिर भी हर तरह की वबाई बीमारी से पाक रहता है।

३. उस महान् जाति की ओर देखो; उसपर कितने ही बोझ के ऊपर बोझ पड़ें, वह उन्हे दिलेरी के

साथ बर्दाश्त करेगी और साथ ही साथ अपने सारे कर अदा कर देगी।

४. वही देश महान् है, जो अकाल और महामारी से आज़ाद है और जो शत्रुओं के आक्रमणों से सुरक्षित है।

५. वही महान् जाति है, जो परस्पर युद्ध करने वाले दलों में विभक्त नहीं है, जो हत्यारे क्रान्तिकारियों से पाक है और जिसके अन्दर जाति का सर्वनाश करने वाला कोई देश-द्रोही नहीं है।

६. देखो, जो मुल्क दुश्मनों के हाथों कभी तबाह और बर्बाद नहीं हुआ, और कभी हो भी जाय तब भी जिसकी पैदावार में ज़रा भी कमी न आए, वह देश तमाम दुनिया के मुल्कों में हीरा समझा जायगा।

७. पृथ्वीतल के ऊपर रहने वाला जल, ज़मीन के अन्दर बहने वाला जल, वर्षा-जल, उपयुक्त स्थानापन्न पर्वत और सुदृढ़ दुर्ग—ये चीज़ें प्रत्येक देश के लिए अनिवार्य हैं।

८. धन-सम्पत्ति, जमीन की जरखेजी, खुशहाली, बीमारियों से आजादी और दुश्मनों के हमलों से हिफाजत—ये पाँच बातें राज्य के लिए आभूषण-स्वरूप हैं।

९. वही अकेला देश कहलाने योग्य है, जहाँ मनुष्यों के परिश्रम किये विना ही खूब पैदावार होती है; जिसमें आदमियों के परिश्रम करने पर ही पैदावार हो, वह इस पद का अधिकारी नहीं है।

१०. ये सब नियामतें मौजूद रहते हुए भी वह देश किसी मतलब का नहीं, अगर उस देश का राजा ठीक न हो।

दुर्ग

१. दुर्बलों के लिए, जिन्हें केवल अपने बचाव की ही चिन्ता होती है, दुर्ग बहुत ही उपयोगी होते हैं; मगर बलवान और शक्तिशाली के लिए भी वे कम उपयोगी नहीं होते।

२. जल-प्राकार, रेगिस्तान, पर्वत और सघन वन—ये सब नाना प्रकार के रक्षणात्मक प्रतिबन्ध है।

३. ऊँचाई, मोटाई, मजबूती और अजेयत्व—ये चार गुण हैं, जो निर्माण-कला की दृष्टि से क़िलों के लिए जरूरी हैं।

४. वह गढ़ सबसे उत्तम है, जिसमें कमोजरी या बहुत थोड़ी जगहों पर हो, मगर उसके साथ ही वह खूब विस्तृत हो और जो लोग उसे लेना चाहें उनके आक्रमणों को रोक कर दुश्मनों के बल को तोड़ने की शक्ति रखता हो।

५. अजेयत्व, दुर्ग-सैन्य के लिए रक्षणात्मक सुविधा और दुर्ग के अन्दर रसद और सामान की बहुतायत, ये सब बातें दुर्ग के लिए आवश्यक हैं।

६. वही सच्चा क़िला है, जिसमें हर तरह का सामान पर्याप्त परिमाण मे मौजूद है और जो ऐसे लोगो की संरक्षकता में हो कि जो क़िले को बचाने के लिए वीरता-पूर्वक लड़ें।

७. बेशक वह सच्चा क़िला है, जिसे न तो कोई घेरा डाल कर जीत सके, न अचानक हमला करके, और न कोई जिसे सुरङ्ग लगा कर ही तोड़ सके।

८. निःसन्देह वह वास्तविक दुर्ग है, जो किले की सेना को घेरा डालने वाले शत्रुओ को हराने के योग्य बना देता है, यद्यपि वे उसको लेने

की चाहे कितनी ही कोशिश क्यों न करें।

९. निःसन्देह वह दुर्ग है, जो नाना प्रकार के साधनों द्वारा अजेय बन गया है और जो अपने संरक्षकों को इस योग्य बनाता है कि वे दुश्मनों को किले की सुदूर सीमा पर ही मार कर गिरा सकें।

१०. मगर क़िला चाहे कितना ही मजबूत क्यों न हो, वह किसी काम का नहीं, अगर संरक्षक लोग वक्त पर फुर्ती से काम न लें।
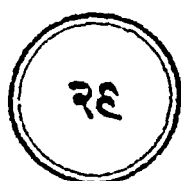
धनोपार्जन

१. अप्रसिद्ध और बेक़द्रोकीमत लोगों को प्रतिष्ठित बनाने में जितना धन समर्थ है, उतना और कोई पदार्थ नहीं।

२. ग़रीबों का सभी अपमान करते हैं, मगर धन-धान्यपूर्ण मनुष्य की सभी जगह अभ्यर्थना होती है।

३. वह अविश्रान्त ज्योति, जिसे लोग धन कहते हैं, अपने स्वामी के लिए सभी अन्धकारमय *स्थानों को ज्योत्स्नापूर्ण बना देती है।

---

* अन्धकार के लिए जो शब्द मूल में है, उसके अर्थ बुराई और दुश्मनी के भी हो सकते हैं।

४. देखो, जो धन पाप-रहित निष्कलङ्क रूप से प्राप्त किया जाता है, उससे धर्म और आनन्द का स्रोत बह निकलता है।

५. जो धन दया और ममता से रहित है, उसकी तुम कभी इच्छा मत करो और उसको कभी अपने हाथ से मत छुओ।

६. ज़ब्तशुदा और मतरूक जायदादें, लगान और मालगुज़ारी और युद्ध में प्राप्त किया हुआ माल—ये सब चीज़ें राजा के कोष में वृद्धि करती हैं।

७. दयार्द्रता जो प्रेम की सन्तति है, उसका पालन-पोषण करने के लिए सम्पत्ति-रूपिणी दयालु-हृदया धाय की आवश्यकता है।*

८. देखो, धनवान् आदमी जब अपने हाथ में काम लेता है तो वह उस मनुष्य के समान

---

* हृदय में दया के भाव का विकास करने के लिए सम्पत्ति की आवश्यकता है। सम्पत्ति द्वारा दूसरों की सेवा की जा सकती है।

मालूम होता है कि जो एक पहाड़ की चोटी पर से हाथियों की लड़ाई देखता है।†

९. धन इकट्ठा करो; क्योंकि शत्रु का गर्व चूर करने के लिए उससे बढ़ कर दूसरा हथियार नहीं है।

१०. देखो, जिसने बहुत-सा धन जमा कर लिया है, शेष दो पुरुषार्थ —धर्म और काम— उसके करतल-गत हैं।

---

† क्योंकि बिना किसी भय और चिन्ता के वह अपना काम कर सकता है।

सेना के लक्षण

१. एक सुसङ्गठित और बलवती सेना, जो ख़तरे से भयभीत नही होती है, राजा के वश-वर्ती पदार्थों में सर्व-श्रेष्ठ है।

२. बेहिसाब आक्रमणों के होते हुए भयङ्कर निराशा-जनक स्थिति की रक्षा मँजे हुए बहा-दुर सिपाही ही अपने अटल निश्चय के द्वारा कर सकते हैं।

३. यदि वे समुद्र की तरह गरजते भी हैं, तो इससे क्या हुआ? काले नाग की एक ही

फुफकार में चूहों का सारा भुण्ड का भुण्ड विलीन हो जायगा।

४. जो सेना हारना जानती ही नहीं और जो कभी भ्रष्ट नहीं की जा सकती और ज़िसने बहुनसे अवसरों पर बहादुरी दिखाई है, वास्तव में वही सेना नाम की अधिकारिणी है।

५. वास्तव में सेना का नाम उसीको शोभा देता है कि जो बहादुरी के साथ यमराज का भी मुकाबला कर सके, जब कि वह अपनी पूर्ण प्रचण्डता के साथ सामने आवे।

६. बहादुरी, प्रतिष्ठा, एक साफ दिमाग़ और पिछले ज़माने की लड़ाइयों का इतिहास—ये चार बातें सेना की रक्षा करने के लिए कवच-स्वरूप हैं।

७. जो सच्ची सेना है, वह सदा दुश्मन की तलाश में रहती है; क्योंकि उसको पूर्णविश्वास है कि जब कोई दुश्मन लड़ाई करेगा तो वह उसे अवश्य जीत लेगी।

८. सेना में जब मुस्तैदी और एकाएक प्रचण्ड

आक्रमण करने की शक्ति नहीं होती, तब शानो-शौक़त और जाहोजलाल उस कमज़ोरी को केवल पूरा भर कर देते हैं।

९. जो सेना संख्या में कम नही है और जिसको वेतन न पाने के कारण भूखों नही मरना पड़ता, वह सेना विजयी होगी।

१०. सिपाहियों की कमी न होने पर भी कोई फ़ौज नहीं बन सकती, जबतक कि उसका सञ्चालन करने के लिए सरदार न हो।

वीर योद्धा का आत्म-गौरव

१. अरे ऐ दुश्मनो ! मेरे मालिक के सामने, युद्ध में, खड़े न होओ; क्योंकि बहुतसे आदमियों ने उसे युद्ध के लिए ललकारा था, मगर आज वे सब पत्थर * की कब्रों के नीचे पड़े हुए हैं।

२. हाथी के ऊपर चलाया गया भाला अगर चूक भी जाय तब भी उसमें अधिक गौरव

---

* तामिल देश में बहादुरों की चिताओं और क़ब्रों के ऊपर कीर्ति-स्तंभ के रूप में एक पत्थर गाड़ दिया जाता था।

है, बनिस्बत उस तीर के जो ख़रगोश पर चलाया जाय और उसके लग भी जाय। †

३. वह प्रचण्ड साहस जो प्रबल आक्रमण करता है, उसीको लोग वीरता कहते हैं; लेकिन उसकी शान उस दिलेराना फ़ैयाज़ी में है कि जो अधःपतित शत्रु के प्रति दिखाई जाती है।

४. सिपाही ने अपना भाला हाथी के ऊपर चला दिया और वह दूसरे भाले की तलाश में जा रहा था, कि इतने में उसने एक भाला अपने शरीर में घुसा हुआ देखा और ज्योंही उसने उसे बाहर निकाला वह ख़ुशी से मुस्करा उठा।

५. वीर पुरुष के ऊपर भाला चलाया जाय और उसकी आँख ज़रा सी झपक भर जाय, तो क्या यह उसके लिए शर्म की बात नहीं है ?

६. बहादुर आदमी जिन दिनों अपने जिस्म पर

---

† Higher aims are in themselves more valuable even if unfulfilled than lower ones quite attained—Goethe.

गहरे घाव नहीं खाता है, वह समझता है कि वे दिन व्यर्थ नष्ट हो गये।)

७. देखो, जो लोग अपनी जान की पर्वाह नहीं करते मगर पृथ्वी-भर में फैली हुई कीर्ति की कामना करते है, उनके पाँव के कड़े भी आँखों को आल्हादकारक होते हैं।

८. देखो, जो बहादुर लोग युद्धक्षेत्र मे मरने से नहीं डरते, वे अपने सरदार के सख्ती करने पर भी सैनिक नियमो को नहीं भूलते।

९. अपने हाथ में लिये हुए काम को सम्पादन करने के उद्योग में जो लोग अपनी जान गँवा देते हैं, उनको दोष देने का किसको अधिकार है?

१०. अगर कोई अदमी ऐसी मौत मर सके कि जिसे देख कर उसके सरदार की आँख से आँसू निकल पड़ें, तो भीख माँग कर और खुशामद करके भी ऐसी मौत को हासिल करना चाहिए।

मित्रता

१. दुनिया में ऐसी कौनसी वस्तु है, जिसका हासिल करना इतना मुश्किल है, जितना कि दोस्ती का? और दुश्मनों से रक्षा करने के लिए मित्रता के समान और कौनसा कवच है?

२. योग्य पुरुषों की मित्रता बढ़ती हुई चन्द्र-कला के समान है, मगर बेवक़ूफ़ों की दोस्ती घटते हुए चाँद के समान है।

३. योग्य पुरुषों की मित्रता दिव्य ग्रन्थों के स्वाध्याय के समान है; जितनी ही उनके साथ तुम्हारी घनिष्ठता होती जायगी, उतनी ही अधिक

खूबियाँ तुम्हें उनके अन्दर दिखाई पड़ने लगेंगी।

४. मित्रता का उद्देश्य हँसी-दिल्लगी करना नहीं है; बल्कि जब कोई बहक कर कुमार्ग में जाने लगे, तो उसको रोकना और उसकी भर्त्सना करना ही मित्रता का लक्ष्य है।

५. बार-बार मिलना और सदा साथ रहना इतना जरूरी नहीं है; यह तो हृदयों की एकता ही है कि जो मित्रता के सम्बन्ध को स्थिर और सुदृढ़ बनाती है।

६. हँसी-दिल्लगी करने वाली गोष्ठी का नाम मित्रता नहीं है; मित्रता तो वास्तव में वह प्रेम है, जो हृदय को आल्हादित करता है।

७. जो मनुष्य तुम्हें बुराई से बचाता है, नेक राह पर चलाता है, और जो मुसीबत के वक्त तुम्हारा साथ देता है, बस वही मित्र है।

८. देखो, उस आदमी का हाथ कि जिसके कपड़े हवा से उड़ गये हैं, कितनी तेजी के साथ फिर से अपने बदन को ढकने के लिए दौड़ता है! वही सच्चे मित्र का आदर्श है, जो मुसीबत में

पड़े हुए आदमी की सहायता के लिए दौड़ कर जाता है।

९. मित्रता का दरबार कहाँ पर लगता है? बस वहीं पर कि जहाँ दो दिलों के बीच में अनन्य प्रेम और पूर्ण एकता है और जहाँ दोनों मिल कर हर एक तरह से एक दूसरे को उच्च और उन्नत बनाने की चेष्टा करें।

१०. जिस दोस्ती का हिसाब लगाया जा सकता है उसमें एक तरह का कँगलापन होता है—वह चाहे कितने ही गर्वपूर्वक कहे कि मैं उसको इतना प्यार करता हूँ और वह मुझे इतना चाहता है।

मित्रता के लिए योग्यता की परीक्षा

१. इससे बढ़कर बुरी बात और कोई नहीं है कि बिना परीक्षा किये किसीके साथ दोस्ती कर ली जाय, क्योंकि एक बार मित्रता हो जाने पर सहृदय पुरुष फिर उसे छोड़ नहीं सकता।

२. देखो, जो पुरुष पहले आदमियों की जाँच किये बिना ही उनको मित्र बना लेता है, वह अपने सिर पर ऐसी आपत्तियों को बुलाता है कि जो सिर्फ उसकी मौत के साथ ही समाप्त होगी।

३ जिस मनुष्य को तुम अपना दोस्त बनाना

चाहते हो उसके कुल का, उसके गुण-दोषों को, कौन-कौन लोग उसके साथी हैं और किन-किन-के साथ उसका सम्बन्ध है, इन सब बातो का अच्छी तरह से विचार करलो और उसके बाद यदि वह योग्य हो तो उसे दोस्त बना लो।

४. देखो, जिस पुरुष का जन्म उच्च कुल में हुआ है और जो बेइज्जती से डरता है उसके साथ आवश्यकता पड़े तो मूल्य देकर भी दोस्ती करनी चाहिए।

५। ऐसे लोगो को खोजो और उनके साथ दोस्ती करो कि जो सन्मार्ग को जानते हैं और तुम्हारे बहक जाने पर तुम्हें झिड़क कर तुम्हारी भर्त्सना कर सकते हैं।

६. आपत्ति में भी एक गुण है—वह एक पैमाना है, जिससे तुम अपने मित्रों को नाप सकते हो।

७. निःसन्देह मनुष्य का लाभ इसीमें है कि वह मूर्खों से मित्रता न करे।

८. ऐसे विचारों को मत आने दो, जिनसे मन निरुत्साह और उदास हो, और न ऐसे लोगों

से दोस्ती करो, जो दुःख पड़ते ही तुम्हारा साथ छोड़ देंगे ।

९. जो लोग मुसीबत के वक़्त धोखा दे जाते हैं, उनकी मित्रता की याद मौत के वक़्त भी दिल मे जलन पैदा करेगी ।

१०. पाकोसाफ लोगो के साथ बड़े शौक़ से दोस्ती करो; मगर जो लोग तुम्हारे अयोग्य हैं उनका साथ छोड़ दो, इसके लिए चाहे तुम्हे कुछ भेंट भी देनी पड़े ।

झूठी मित्रता

१. उन कम्बख्त नालायकों से होशियार रहो कि जो अपने लाभ के लिए तुम्हारे पैरों पर पड़ने को तैयार हैं, मगर जब तुमसे उनका कुछ मतलब न निकलेगा तो वे तुम्हें छोड़ देंगे। भला ऐसों की दोस्ती रहे या न रहे, इससे क्या आता-जाता है ?

२. कुछ आदमी उस अक्खड़ घोड़े की तरह होते हैं कि जो युद्ध क्षेत्र में अपने सवार को गिरा कर भाग जाता है। ऐसे लोगों से दोस्ती रखने

की बनिस्बत तो अकेले रहना हज़ार दर्जे बेहतर है।

३. बुद्धिमानों की दुश्मनी भी बेवकूफों की दोस्ती से हज़ार दर्जे बेहतर है; और खुशामदी और मतलबी लोगों की दोस्ती से दुश्मनो की घृणा सैकड़ों दर्जे अच्छी है।

४. देखो, जो लोग यह सोचते हैं कि हमे उस दोस्त से कितना मिलेगा, वे उसी दर्जे के लोग है कि जिनमें चोरों और बाज़ारू औरतों की गिनती है।

५. खबरदार, उन लोगों से ज़रा भी दोस्ती न करना कि जो कमरे में बैठ कर तो मीठी-मीठी बातें करते हैं मगर बाहर आम लोगों में निन्दा करते हैं!

६. जो लोग ऊपर से तो दोस्ती दिखाते हैं मगर दिल में दुश्मनी रखते हैं, उनकी मित्रता औरत के दिल की तरह ज़रासी देर में बदल जायगी।

७. उन मक्कार बदमाशों से डरते रहो कि जो

आदमी के सामने ऊपरी दिल से हँसते हैं मगर अन्दर ही अन्दर दिल में जानी दुश्मनी रखते हैं।)

८. दुश्मन अगर नम्रता-पूर्वक झुककर बात-चीत करे, तो भी उसका विश्वास न करो; क्योंकि कमान जब झुकती है तो वह और कुछ नहीं अनिष्ट की ही भविष्यवाणी करती है।

९. दुश्मन अगर हाथ जोड़े तब भी उसका विश्वास न करो। मुमकिन है, उसके हाथों में कोई हथियार छिपा हो। और न तुम उसके आँसू बहाने पर ही यक़ीन लाओ।

१०. अगर दुश्मन तुमसे दोस्ती करना चाहे और यदि तुम अपने दुश्मन से अभी खुला वैर नहीं कर सकते हो, तो उसके सामने ज़ाहिरा दोस्ती का बर्ताव करो मगर दिल से उसे सदा दूर रक्खो।

मूर्खता

१. क्या तुम जानना चाहते हो कि मूर्खता किसे कहते हैं ? जो चीज लाभदायक है, उसको फेंक देना और हानिकारक पदार्थ को पकड़ रखना—बस, यही मूर्खता है ।

२. मूर्ख मनुष्य अपने कर्त्तव्य को भूल जाता है, जबान से वाहियात और सख्त बातें निकालता है; उसे किसी तरह की शर्म और हया का खयाल नहीं होता, और न किसी नेक बात को वह पसन्द करता है ।

३. एक आदमी खूब पढ़ा-लिखा और चतुर

है और दूसरों का गुरु है; मगर फिर भी वह इन्द्रिय-लिप्सा का दास बना रहता है—उससे बढ़ कर मूर्ख और कोई नहीं है।

४. अगर मूर्ख को इत्तफ़ाक़ से बहुतसी दौलत मिल जाय, तो ऐरे-ग़ैरे अजनवी लोग ही मज़े उड़ायेंगे मगर उसके बन्धु-बान्धव तो बेचारे भूखों ही मरेंगे।

५. योग्य पुरुषों की सभा में किसी मूर्ख मनुष्य का जाना ठीक वैसा ही है, जैसा कि साफ़-सुथरे पलङ्ग के ऊपर मैला पैर रख देना।

६. अकाल की ग़रीबी ही वास्तविक ग़रीबी है। और तरह की ग़रीबी को दुनिया ग़रीबी ही नहीं समझती।

७. मूर्ख आदमी ख़ुद अपने सिर पर जो मुसीबतें लाता है, उसके दुश्मनों के लिए भी उसको वैसी मुसीबतें पहुँचाना मुश्किल होगा।

८. क्या तुम यह जानना चाहते हो कि मन्द-बुद्धि किसे कहते हैं? बस, उसी अहङ्कारी को, जो अपने मन में कहता है कि मै अक़्लमन्द हूँ।

९. मूर्ख आदमी अगर अपने नङ्गे बदन को ढकता है तो इससे क्या फायदा, जब कि उस के मन के ऐब ढके हुए नहीं हैं ?

१०. देखो, जो आदमी न तो खुद भला-बुरा पहचानता है और न दूसरों की सलाह मानता है, वह अपनी जिन्दगी-भर अपने साथियों के लिये दुखदायी बना रहता है।

शत्रुओं के साथ व्यवहार

१. उस हत्यारी चीज़ को कि जिसे लोग दुश्मनी कहते हैं, जान-बूझ कर कभी न छेड़ना चाहिए; चाहे वह मज़ाक़ ही के लिए क्यों न हो।

२. तुम उन लोगों को भले ही शत्रु बना लो कि जिनका हथियार तीर-कमान है, मगर उन लोगों को कभी मत छेड़ना, जिनका हथियार ज़बान है।

३. देखो, जिस राजा के पास सहायक तो कोई भी नहीं है, मगर जो ढेर के ढेर दुश्मनों को

युद्ध के लिये ललकारता है, वह पागल से भी बढ़ कर पागल है।

४. जिस राजा में शत्रुओं को मित्र बना लेने की कुशलता है उसकी शक्ति सदा स्थिर रहेगी॥

५. यदि तुमको बिना किसी सहायक के अकेले दो शत्रुओं से लड़ना पड़े, तो उन दो में से किसी एक को अपनी ओर मिला लेने की चेष्टा करो।

६. तुमने अपने पड़ोसी को दोस्त या दुश्मन बनाने का कुछ भी निश्चय कर रक्खा हो, बाह्य आक्रमण होने पर उसे कुछ भी न बनाओ; बस, यों ही छोड़ दो।

७. अपनी मुश्किलों का हाल उन लोगों पर जाहिर न करो कि जो अभी तक अनजान हैं और न अपनी कमजोरियाँ अपने दुश्मनों को मालूम होने दो।

८. एक चतुरता-पूर्ण युक्ति सोचो, अपने साधनों को सुदृढ़ और सुसंगठित बनाओ, और अपनी रक्षा का पूर्ण प्रबन्ध कर लो; यदि तुम

यह सब कर लोगे तो तुम्हारे शत्रुओ का गर्व चूर्ण हो कर धूल मे मिलते कुछ देर न लगेगी।

९. काँटेदार वृक्षों को छोटेपन में ही गिरा देना चाहिए, क्योंकि जब वे बड़े हो जाँयगे तो स्वयं ही उस हाथ को जख्मी बना डालेंगे कि जो उन्हे काटने की कोशिश करेगा।

१०. जो लोग अपना अपमान करने वालों का गर्व चूर्ण नहीं करते वे बहुत समय तक नहीं रहेगे।
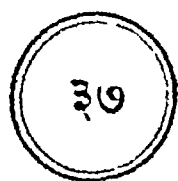
घर का भेदी

१. कुञ्ज-वन और पानी के फव्वारे भी कुछ आनन्द नहीं देते, अगर उनसे बीमारी पैदा होती है; इसी तरह अपने रिश्तेदार भी जघन्य हो उठते हैं, जब कि वे उसका सर्वनाश करना चाहते हैं।

२. उस शत्रु से डरने की जरूरत नहीं है कि जो नङ्गी तलवार की तरह है, मगर उस शत्रु से सावधान रहो कि जो मित्र बन कर तुम्हारे पास आता है।

३. अपने गुप्त शत्रु से सदा होशियार रहो, क्योंकि

मुसीबत के वक्त वह तुम्हें कुम्हार की डोरी की तरह, बड़ी सफ़ाई से, काट डालेगा।

४. अगर तुम्हारा कोई ऐसा शत्रु है कि जो मित्र के रूप में घूमता-फिरता, है तो वह शीघ्र ही तुम्हारे साथियों में फूट के बीज बो देगा और तुम्हारे सिर पर सैकड़ों बलायें ला डालेगा।

५. जब कोई भाई-बिरादर तुम्हारे प्रतिकूल विद्रोह करे तो वह तुम पर ढेर की ढेर आपत्तियाँ ला सकता है, यहाँ तक कि उससे खुद तुम्हारी जान के लाले पड़ जायँगे।

६. जब किसी राजा के दरबार में दग़ाबाज़ी प्रवेश कर जाती है, तो फिर यह असम्भव है कि एक न एक दिन वह उसका शिकार न हो जाय।

७. जिस घर में फूट पड़ी हुई है, वह उस बर्तन के समान है, जिसमें ढक्कन लगा हुआ है; यद्यपि वे दोनों देखने में एकसे मालूम होते हैं, मगर फिर भी वे एक चीज़ कभी नहीं हो सकते।

८. देखो, जिस घर में फूट है वह रेती से रेते हुए लोहे की तरह रेजे-रेजे होकर धूल में मिल जायगा।

९. जिस घर मे पारस्परिक कलह है, सर्वनाश उसके सिर पर लटक रहा है—फिर वह कलह चाहे तिल मे पड़ी हुई दरार की तरह ही छोटी क्यों न हो।

१०. देखो, जो मनुष्य ऐसे आदमी के साथ बेत-कल्लुफी से पेश आता है कि जो दिल ही दिल मे उससे नफरत करता है, वह उस मनुष्य के समान है, जो काले नाग को साथी बनाकर एक ही झोपड़े में रहता है।

महान् पुरुषों के प्रति दुर्व्यवहार न करना

१. जो आदमी अपनी भलाई चाहता है, उसे सबसे ज्यादा खबरदारी इस बात की रखनी चाहिए कि वह होशियारी के साथ महान् पुरुषों का अपमान करने से अपने को बचाये रक्खे।

२. अगर कोई आदमी महात्माओं का निरादर करेगा तो उनकी शक्ति से उसके सिर पर अनन्त आपत्तियाँ आ टूटेंगी।

३. क्या तुम अपना सर्वनाश कराना चाहते हो? तो जाओ, किसीकी नेक सलाह पर ध्यान न दो और जाकर उन लोगों के साथ छेड़खानी

करो कि जो जब चाहे तुम्हारा नाश करने की शक्ति रखते हैं।

४. देखो, दुर्बल मनुष्य जो बलवान और शक्तिशाली पुरुषों का अपमान करता है, वह मानो यमराज को अपने पास आने का इशारा करता है।

५. देखो, जो लोग शक्ति-शाली महान पुरुषों और राजाओं के क्रोध को उभारते हैं, वे चाहे कहीं जायँ कभी खुशहाल न होंगे।

६. जलती हुई आग में पड़े हुए लोग चाहे भले ही बच जायँ, मगर उन लोगों की रक्षा का कोई उपाय नहीं है कि जो शक्ति-शाली लोगों के प्रति दुर्व्यवहार करते है।

७. यदि आत्मिक-शक्ति से परिपूर्ण ऋषिगण तुमपर क्रुद्ध हैं, तो विविध प्रकार के आनन्दोच्छ-वास से उल्लसित तुम्हारा जीवन और समस्त ऐश्वर्य से पूर्ण तुम्हारा धन कहाँ होगा ?

८. देखो, जिन राजाओं का अस्तित्व अनन्त रूप से स्थायी भित्ति पर स्थापित है, वे भी अपने

समस्त बन्धु-बान्धवों सहित नष्ट हो जायँगे, यदि पर्वत के समान शक्ति-शाली महर्षिगण उनके सर्वनाश की कामना-भर करें।

९. और तो और, देवेन्द्र भी अपने स्थान से भ्रष्ट हो जाय और अपना प्रभुत्व गँवा बैठे, यदि पवित्र प्रतिज्ञा वाले सन्त लोग क्रोध-भरी दृष्टि से उसकी ओर देखें।*

१०. यदि महान् आत्मिक-शक्ति रखने वाले लोग रुष्ट हो जायँ, तो वे मनुष्य भी नहीं बच सकते कि जो मजबूत से मजबूत आश्रय के ऊपर निर्भर हैं।

---

*नहुष की कथा।

स्त्री का शासन

१. जो लोग अपनी स्त्रियों के श्रीचरणों की अर्चना में ही लगे रहते है, वे कभी महत्त्व प्राप्त नहीं कर सकते हैं, और जो महान् कार्य करने की उच्चाशा रखते है, वे ऐसे वाहियात प्रेम के फन्दे में नहीं फँसते।

२. जो आदमी वेतरह अपनी स्त्री के मोह के फेर मे पड़ा हुआ है, वह अपनी समृद्धशाली अवस्था में भी लोगों में वदनाम हो जायगा और शर्म से उसे अपना मुँह छिपाना पड़ेगा।

३. वह नामर्द जो अपनी स्त्री के सामने झुक कर

चलता है, लायक़ लोगों के सामने अपना मुहँ दिखाने में हमेशा शरमावेगा।)

४. शोक है उस मुक्ति-विहीन अभागे पर, जो अपनी स्त्री के सामने काँपता है। उसके गुणों की कभी कोई क़द्र न करेगा।

५. जो आदमी अपनी स्त्री से डरता है वह लायक़ लोगों की सेवा करने का भी साहस नहीं कर सकता।

६. जो लोग अपनी स्त्रियों की नाजुक बाजुओं से खौफ़ खाते हैं, वे अगर फ़रिश्तों की तरह रहें तब भी कोई उनकी इज्ज़त न करेगा।

७. देखो, जो आदमी चोली-राज्य का आधिपत्य स्वीकार करता है, एक लजीली कन्या में भी उससे अधिक गौरव होता है।

८. देखो, जो लोग अपनी स्त्री के कहने में चलते है, वे अपने मित्रों की आवश्यकताओं को भी पूर्ण न कर सकेंगे और न उनसे कोई नेक काम ही हो सकेगा।

९. देखो, जो मनुष्य स्त्री का शासन स्वीकार

करते हैं, उन्हें न तो धर्म मिलेगा और न धन; न उन्हें मुहब्बत का मज़ा चखना ही नसीब होगा।

१०. देखो, जिन लोगों के विचार महत्वपूर्ण कार्यों में रत हैं और जो सौभाग्य-लक्ष्मी के कृपा-पात्र हैं, वे अपनी स्त्रियों के मोह-जाल में फँसने की बेवकूफी नहीं करते।
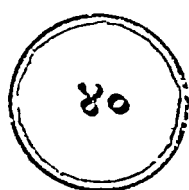
शराब से घृणा

१. देखो, जिन लोगों को शराब पीने की लत पड़ी हुई है, उनके दुश्मन उनसे कभी न डरेंगे और जो कुछ शानोशौक़त उन्होंने हासिल कर ली है, वह भी जाती रहेगी।

२. कोई भी शराब न पिये; लेकिन अगर कोई पीना ही चाहे तो उन लोगों को पीने दो कि जिन्हे लायक लोगों से इज्जत हासिल करने की पर्वाह नहीं है।

३. (जो आदमी नशे में मदहोश है, उसकी सूरत खुद उसकी माँ को बुरी मालूम होती है।

भला, शरीफ आदमियों को फिर उसकी सूरत कैसी लगेगी ?)

४. देखो, जिन लोगो को मदिरा-पान की घृणित आदत पड़ी हुई है, सुन्दरी लज्जा उनसे अपना मुँह फेर लेती है।

५. यह तो हद दर्जे की बेवकूफी और नालायकी है कि अपना रुपया खर्च करें और बदले में सिर्फ बेहोशी और बदहवासी हाथ लगे।

६. देखो, जो लोग हर रोज उस ज़हर को पीते हैं कि जिसे ताड़ी या शराब कहते हैं, वे मानो महा निद्रा में अभिभूत हैं। उनमे और मुर्दों मे कोई फर्क नही है।

७. देखो, जो लोग खुफिया तौर पर नशा पीते हैं और अपने समय को बदहवाशी और बेहोशी की दशा में गुजारते है, उनके पड़ोसी जल्दी ही इस बात को जान जायेंगे और उनसे सख्त नफरत करेंगे।

८. शराबी आदमी बेकार यह कह कर बहाना-बाज़ी न करे कि मैं तो जानता ही नहीं, नशा किसे

कहते हैं; क्योंकि ऐसा करने से वह सिर्फ अपनी उस बदकारी के साथ झूँठ बोलने के पाप को शामिल करने का भागी होगा।

९. जो शख्स नशे में मस्त हुए आदमी को नसीहत करता है, वह उस आदमी की तरह है जो पानी में डूबे हुए आदमी को मशाल लेकर ढूँढता है।

१०. जो आदमी होशोहवास की हालत में किसी शराबी की दुर्गति देखता है तो क्या वह खुद उससे कुछ अन्दाजा नहीं लगा सकता है कि जब वह नशे में होता है तो उसकी हालत कैसी होती होगी?
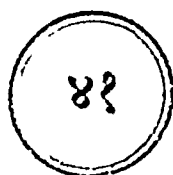
वेश्या

१. देखो, जो स्त्रियाँ प्रेम के लिए नहीं बल्कि धन के लोभ से किसी पुरुष की कामना करती हैं, उनकी चापलूसी की बातें सुनने से दुःख ही दुःख होता है।

२. देखो, जो दुष्ट स्त्रियाँ मधु-मयी वाणी बोलती हैं मगर जिनका ध्यान अपने मुनाफे पर रहता है, उनकी चाल-ढाल को ख्याल मे रख कर उनसे सदा दूर रहो।

३. वेश्या जब अपने प्रेमी को छाती से लगाती है तो वह ज़ाहिरा यह दिखाती है कि वह उससे प्रेम करती है; मगर दिल में तो उससे

ऐसा अनुभव होता है जैसे कोई बेगारी अन्धेरे कमरे में किसी अजनबी के मुर्दा जिस्म को छूने से अनुभव करता है।❀

४. देखो, जिन लोगों के मन का झुकाव पवित्र कार्यों की ओर है, वे असती स्त्रियों के स्पर्श से अपने शरीर को कलंकित नहीं करते।

५. जिन लोगों की बुद्धि निर्मल है और जिनमें अगाध ज्ञान है वे उन औरतों के स्पर्श से अपने को अपवित्र नहीं करते कि जिनका सौन्दर्य और लावण्य सब लोगों के लिए खुला है।

६. जिनको अपनी भलाई का ख्याल है, वे उन शोख और आवारा औरतों का हाथ नहीं छूते कि जो अपनी नापाक खूबसूरती को बेचती फिरती हैं।

७. जो ओछी तबियत के आदमी हैं, वही उन स्त्रियों को खोजेंगे कि जो सिर्फ शरीर से आलिं-

---

❀ पैसा देकर किसी मनुष्य से लाश उठवाई जाय तो वह मनुष्य उस लाश को अन्धेरे में छूकर वीभत्स घृणा का अनुभव करेगा।

गन करती है जब कि उनका दिल दूसरी जगह रहता है ।

८. जिनमें सोचने-समझने की बुद्धि नहीं है, उनके लिए चालाक कामिनियों का आलिंगन ही अप्सराओं की मोहनी के समान है ।

९. खूब साज-सिंगार किये और बनी-ठनी फाहिशा औरत के नाजुक बाजू एक तरह की गन्दी—दोजखी—नाली है जिसमें घृणित मूर्ख लोग जाकर अपने को डुबा देते हैं ।

१०. दो दिलोंवाली औरत, शराब और जुआ, ये उन लोगों की खुशी के सामान हैं कि जिन्हें भाग्य-लक्ष्मी छोड़ देती है ।

औषधि

१. वात से शुरू करके जिन तीन गुणों* का वर्णन ऋषियों ने किया है, उनमें से कोई भी यदि अपनी सीमा से घट या बढ़ जायगा तो वह बीमारी का कारण होगा।

२. शरीर के लिए औषधि की कोई जरूरत ही न हो यदि खाया हुआ खाना हजम हो जाने के बाद नया खाना खाया जाय।

३. खाना हमेशा एतदाल के साथ खाओ और खाये हुए खाने के अच्छी तरह से पच जाने

---

* वात, पित्त, कफ।

के बाद भोजन करो—दीर्घायु होने का बस यही मार्ग है।

४. जब तक तुम्हारा खाना हजम न हो जाय और तुम्हें खूब तेज भूख न लगे तब तक ठहरे रहो और उसके बाद एहतियात के साथ वह खाना खाओ जो तुम्हारी प्रकृति के अनुकूल है।

५. अगर तुम एहतियात के साथ ऐसा खाना खाओ कि जो तुम्हारी रुचि के अनुकूल है तो तुम्हारे जिस्म मे किसी किस्म की तकलीफ पैदा न होगी।

६. जिस तरह तन्दुरुस्ती उस आदमी को ढूँढती है जो पेट खाली होने पर ही खाना खाता है; ठीक इसी तरह बीमारी उसको ढूँढती फिरती है जो हद से ज्यादा खाता है।

७. देखो, जो आदमी बेवकूफी करके अपनी जठराग्नि से परे खूब ठूँस-ठूँस कर खाना खाता है, उसकी बीमारियों की कोई सीमा न रहेगी।

८. रोग, उसकी उत्पत्ति और उसके निदान का

पहले विचार कर लो और तब होशियारी के साथ उसको दूर करने में लग जाओ।

९. वैद्य को चाहिए कि वह बीमार, बीमारी और मौसम के बाबत ग़ौर कर ले और तब उसके बाद दवा शुरू करे।

१०. रोगी, वैद्य, औषधि और अत्तार—इन चार पर सारे इलाज का दारोमदार है और उनमें से हर एक के फिर चार-चार गुण हैं।
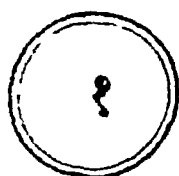
कुलीनता

१. रास्तबाज़ी और हयादारी स्वभावतः उन्हीं लोगों में होती है, जो अच्छे कुल में जन्म लेते हैं।

२. सदाचार, सत्य-प्रियता और सलज्जता इन तीन चीज़ों से कुलीन पुरुष कभी पदस्खलित नहीं होते।

३. सच्चे कुलीन सज्जन में ये चार गुण पाये जाते हैं—हँस-मुख चेहरा, उदार हाथ, मृदु-भाषण और स्निग्ध निरभिमान।

४. कुलीन पुरुष को करोड़ों रुपये मिलें तब

भी वह अपने नाम को कलङ्कित न होने देगा।

५. उन प्राचीन कुलों के वंशजों की ओर देखो! अपने ऐश्वर्य के क्षीण हो जाने पर भी वे अपनी उदारता को नहीं छोड़ते।

६. देखो, जो लोग अपने कुल के प्रतिष्ठित आचारों को पवित्र रखना चाहते हैं, वे न तो कभी धोखेबाज़ी से काम लेंगे और न कुकर्म करने पर उतारु होंगे।

७. प्रतिष्ठित कुल में उत्पन्न हुए मनुष्य के दोष पर चन्द्रमा के कलङ्क की तरह विशेष रूप से सब की नज़र पड़ती है।

८. अच्छे कुल में उत्पन्न हुए मनुष्य की जुबान से यदि फूहड़ और वाहियात बातें निकलेंगी तो लोग उसके जन्म के विषय तक में शंका करने लगेंगे।

९. जमीन की खासियत का पता उसमें उगने वाले पौधे से लगता है; ठीक इसी तरह, मनुष्य के मुख से जो शब्द निकलते हैं उनसे उसके कुल का हाल मालूम हो जाता है।

१०. अगर तुम नेकी और सद्गुणों के इच्छुक हो तो तुमको चाहिए कि सलज्जता के भाव का उपार्जन करो। अगर तुम अपने वंश को सम्मानित बनाना चाहते हो तो तुम सब लोगों के साथ इज्जत से पेश आओ।
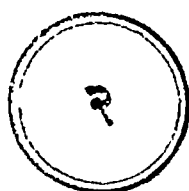
प्रतिष्ठा

१. उन बातों से सदा दूर रहो कि जो तुम्हें नीचे गिरा देंगी; चाहे वे प्राण-रक्षा के लिए अनिवार्य रूप ही से आवश्यक क्यों न हों।

२. देखो, जो लोग अपने पीछे यशस्वी नाम छोड़ जाना चाहते हैं, वे अपनी शान बढ़ाने के लिए भी वह काम न करेंगे कि जो उचित नहीं है।

३. समृद्ध अवस्था में तो नम्रता और विनय की विस्फूर्ति करो; लेकिन हीन स्थिति के समय मान-मर्यादा का पूरा ख़याल रक्खो।

४. देखो, जिन लोगों ने अपने प्रतिष्ठित नाम को दूषित बना डाला है, वे बालों की उन लटों के समान हैं कि जो काट कर फेंक दी गई हों।

५. पर्वत के समान शानदार लोग भी बहुत ही क्षुद्र दिखाई पड़ने लगेंगे, अगर वे कोई दुष्कर्म करेंगे; फिर चाहे वह कर्म घुंघची के समान ही छोटा क्यों न हो।

६. न तो इससे यशोवृद्धि ही होती है और न स्वर्ग-प्राप्ति; फिर मनुष्य ऐसे आदमियों की खुशामद करके क्यों जीना चाहता है कि जो उससे घृणा करते हैं।

७. यह कहीं बेहतर है कि मनुष्य बिना किसी हील-हुज्जत के फौरन ही अपनी किस्मत के लिखे को भोगने के लिए तैय्यार हो जाय बनिस्बत इसके कि वह अपने से घृणा करने वाले लोगों के पाँव पड़ कर अपना जीवन व्यतीत करे।

८. अरे! यह खाल क्या ऐसी चीज है कि लोग

अपनी इज्जत बेच कर भी उसे बचाये रखना चाहते हैं।

९. चमरी-मृग अपने प्राण त्याग देता है जब कि उसके बाल काट लिये जाते हैं; कुछ मनुष्य भी ऐसे ही मानी होते हैं और वे जब अपनी आबरू नहीं रख सकते तो अपनी जीवन-लीला का अन्त कर डालते हैं।

१०. जो आबरूदार आदमी अपनी नेकनामी के चले जाने के बाद जीवित नहीं रहना चाहता, सारा संसार हाथ जोड़ कर उसकी सुयश मयी वेदी पर भक्ति की भेंट चढ़ाता है।
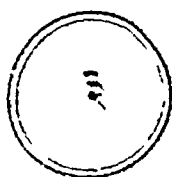
महत्व

१. महान् कार्यों के सम्पादन करने की आकांक्षा को ही लोग महत्व के नाम से पुकारते हैं और ओछापन उस भावना का नाम है जो कहती है कि मैं उसके बिना ही रहूँगी ।

२. पैदायश तो सब लोगों की एक ही तरह की होती है मगर उनकी प्रसिद्धि में विभिन्नता होती है क्योंकि उनका जीवन दूसरी ही तरह का होता है ।

३. शरीफजादे होने पर भी वे अगर शरीफ नहीं हैं तो शरीफ नहीं कहला सकते और जन्म से

नीच होने पर भी जो नीच नहीं है वे नीच नहीं हो सकते।

४. रमणी के सतीत्व की तरह महत्व की रक्षा भी केवल आत्म-शुद्धि—आत्मा के प्रति सरल, निष्कपट व्यवहार—द्वारा ही की जा सकती है।

५. महान पुरुषों मे समुचित साधनों को उपयोग में लाने और ऐसे कार्यों के सम्पादन करने की शक्ति होती है कि जो दूसरों के लिए असाध्य होते हैं।

६. छोटे आदमियों के खमीर मे ही यह बात नहीं होती है कि वे महान् पुरुषों की प्रतिष्ठा करें और उनकी कृपा दृष्टि और अनुग्रह को प्राप्त करने की चेष्टा करें।

७. ओछी तबियत के आदमियों के हाथ यदि कहीं कोई सम्पत्ति लगजाय तो फिर उनके इतराने की कोई सीमा ही न रहेगी।

८. महत्ता सर्वदा ही विनयशील होती है और दिखावा पसन्द नहीं करती मगर क्षुद्रता सारे

संसार में अपने गुणों का ढिंढोरा पीटती फिरती है।)

९. महत्ता सर्वथा ही अपने छोटों के साथ ही नरमी और मेहरबानी से पेश आती है, मगर क्षुद्रता को तो बस घमण्ड की पुतली ही समझो।

१०. बड़प्पन हमेशा ही दूसरों की कमज़ोरियों पर पर्दा डालना चाहता है; मगर ओछापन दूसरों की ऐबजोई के सिवा और कुछ करना ही नहीं जानता।
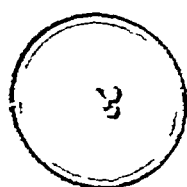
योग्यता

१. देखो, जो लोग अपने कर्त्तव्य को जानते हैं और अपने अन्दर योग्यता पैदा करनी चाहते है. उनकी दृष्टि मे सभी नेक काम कर्त्तव्य स्वरूप हैं ।

२. लायक लोगों के आचरण की सुन्दरता ही उनकी वास्तविक सुन्दरता है; शारीरिक सुन्दरता उनकी सुन्दरता मे किसी तरह की अभिवृद्धि नहीं करती है ।

३. सार्वजनिक प्रेम, सलज्जता का भाव, सब के प्रति सद्व्यवहार, दूसरे दोषो की पर्दादारी

और सत्य-प्रियता—ये पाँच स्तम्भ हैं जिन पर शुभ आचरण की इमारत का आस्तित्व होता है।)

४. सन्त लोगों का धर्म है अहिंसा; मगर योग्य पुरुषों का धर्म इस बात में है कि वे दूसरों की निन्दा करने से परहेज करें।

५. खाकसारी—नम्रता-बलवानों की शक्ति है और वह दुश्मनों के मुकाबिले में लायक़ लोगों के लिए कवच का काम भी देती है।

६. योग्यता की कसौटी क्या है? यही कि दूसरों के अन्दर जो बुजुर्गी और फजीलत है उसका इक़बाल कर लिया जाय; फिर चाहे वह फजीलत ग़ैरों ही लोगों में क्यों न हो कि जो और सब बातों में हर तरह अपने से कम दर्जे के हों। ❀

७. लायक़ आदमी की बुजुर्गी किस काम की अगर

❀ अपने से कम दर्जे के लोगों से हार हो जाने पर उसे मान लेना, यह योग्यता की कसौटी है।

वह अपने को नुक़सान पहुँचाने वालों के साथ भी नेकी का सलूक नहीं करता है।

८. निर्धनता मनुष्य के लिए बेइज्जती का कारण नहीं हो सकती अगर उसके पास वह सम्पत्ति मौजूद हो कि जिसे लोग सदाचार करते हैं।

९. देखो, जो लोग कभी सन्मार्ग से विचलित नहीं होते चाहे प्रलय-काल में और सब कुछ बदल कर इधर की दुनिया उधर हो जाय; वे तो मानों योग्यता के समुद्र की सीमा ही हैं।

१०. निःसन्देह खुद धरती भी मनुष्यों के जीवन का बोझ न सम्हाल सकेगी अगर लायक़ लोग अपनी लायकी छोड़ पतित हो जाँयगे।
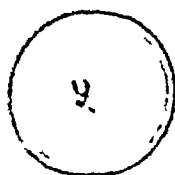
खुश इख्लाकी

१. कहते हैं, मिलनसारी प्राय: उन लोगों में पायी जाती है कि जो खुले दिल से सब लोगों का स्वागत करते हैं।

२. खुश इख्लाकी, मेहरबानी और नेक तरबियत इन दो सिफतों के मजमुए से पैदा होती है।

३. शारीरिक आकृति और सूरत-शक्ल से आदमियों में सादृश्य नहीं होता है बल्कि सच्चा सादृश्य तो आचार-विचार की अभिन्नता पर निर्भर है।

४. देखो, जो लोग न्याय-निष्ठा और धर्म-पालन के

द्वारा अपना और दूसरों का—सबका—भला करते हैं, दुनिया उनके इख्लाक़ की बड़ी क़द्र करती है।

५ हँसी मज़ाक में भी कड़वे वचन आदमी के दिल में चुभ जाते हैं, इसलिए शरीफ़ लोग अपने दुश्मनों के साथ भी बद इख्लाकी से पेश नही आते है।

६. सुसंस्कृत मनुष्यो के अस्तित्व के कारण ही दुनिया का कारोबार निर्द्वन्द्व रूप मे चल रहा है; इसमें कोई शक नही कि यदि ये लोग न होते तो यह अक्षुण्ण साम्य और स्वारस्य मृत-प्राय हो कर धूल में मिल जाता।

७. जिन लोगो के आचार ठीक नही हैं, वे अगर रेती की तरह तेज़ हों तब भी काठ के हथियारो से वेहतर नहीं है।

८. अविनय मनुष्य को शोभा नही देता है, चाहे अन्यायी और विपक्षी पुरुष के प्रति ही उसका व्यवहार क्यो न हो।

९. [देखो, जो लोग मुस्करा नही सकते, उन्हें

इस विशाल लम्बे चौड़े संसार में, दिन के समय भी, अन्धकार के सिवा और कुछ दिखाई न देगा।)

१८. देखो, बद मिजाज आदमी के हाथ में जो दौलत होती है वह उस दूध के समान है जो अशुद्ध, मैले बर्तन में रखने से खराब हो गया हो।
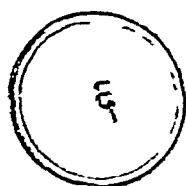
निरुपयोगी धन

१. देखो, जिस आदमी ने अपने घर मे ढेर की ढेर दौलत जमा कर रक्खी है मगर उसे उपयोग में नहीं लाता; उसमें और मुर्दे मे कोई फर्क नहीं है क्योकि वह उससे कोई लाभ नहीं उठाता है।

२. वह कंजूस आदमी जो समझता है कि धन ही दुनिया में सब कुछ है और इसलिए विना किसी को कुछ दिये ही उसे जमा करता है; वह अगले जन्म में राक्षस होगा।

३. देखो, जो लोग सदा ही धन के लिए हाय-हाय

करते फिरते हैं; मगर यशोपार्जन करने की पर्वा नहीं करते, उनका अस्तित्व पृथ्वी के लिए केवल भार स्वरूप है।

४. जो मनुष्य अपने पड़ोसियों के प्रेम को प्राप्त करने की चेष्टा नहीं करता, वह मरने के पश्चात अपने पीछे क्या चीज छोड़ जाने की आशा रखता है?

५. देखो, जो लोग न तो दूसरों को देते हैं और न स्वयं ही अपने धन का उपभोग करते हैं वे अगर करोड़पति भी हों तब भी वास्तव में उन के पास कुछ भी नहीं हैं।

६. दुनियाँ में ऐसे भी कुछ आदमी हैं जो न तो खुद अपने धन को भोगते हैं और न उदारता पूर्वक योग्य पुरुषों को प्रदान करते हैं; वे अपनी सम्पत्ति के लिए रोग-स्वरूप हैं।

७. जो मनुष्य हाजतमन्द को दान दे कर उसकी हाजत को रफा नहीं करता, उसकी दौलत उस लावण्यमयी ललना के समान है जो अपनी

जवानी को एकान्त में निर्जन स्थान में व्यर्थ गँवाये देती है।

८. उस आदमी की सम्पत्ति कि जिसे लोग प्यार नहीं करते हैं, गाँव के बीचोंबीच किसी विष-वृक्ष के फलने के समान है।

९. धर्माधर्म का खयाल न रखकर और अपने को भूखो मारकर जो धन जमा किया जाता है वह सिर्फ ग़ैरों ही के काम में आता है।

१०. उस धनवान मनुष्य की मुसीबत कि जिसने दान दे-दे कर अपने खजाने को खाली कर डाला है, और कुछ नहीं केवल जल बरसाने वाले बादलों के खाली हो जाने के समान है—यह स्थिति अधिक समय तक न रहेगी।
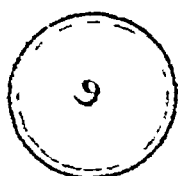
लज्जा की भावना

१. लायक लोगों का लजाना उन कामों के लिए होता है कि जो उनके अयोग्य होते हैं; इसलिए वह सुन्दरी स्त्रियों के शरमाने से बिलकुल भिन्न है।

२. खाना, कपड़ा और सन्तान सब के लिए एक समान हैं; यह तो लज्जा की भावना है जिससे मनुष्य-मनुष्य का अन्तर प्रकट होता है।*

---

* आहार-निद्रा-भय मैथुनञ्च, सामान्यमेतत् पशुभिर्नराणाम्।
धर्मोह्यितेपामधिको विशेषो, धर्मेण हीनाः पशुभिः समानाः॥

संस्कृति-कवि के अनुसार मनुष्य को पशुओं से श्रेष्ठ बनाने वाला धर्म है। महर्षि तिरुवल्लुवर कहते हैं कि मनुष्य से मनुष्य को श्रेष्ठ बनाने वाली लज्जा की भावना है।

३. शरीर तो समस्त प्राणों का निवासस्थान है मगर यह सात्विक लज्जा की लालिमा है जिसमें लायक़ी या योग्यता वास करती है।

४. लज्जा की भावना क्या लायक़ लोगों के लिए मणि के समान नहीं है ? और जब वह उस भावना से रहित होता है तो उसकी शेखी और ऐंठ क्या देखने वाली आँख को पीड़ा पहुँचाने वाली नहीं होती ?

५. देखो, जो लोग दूसरों की बेइज्जती देख कर भी उतने ही लज्जित होते है जितने कि खुद अपनी बेइज्जती से, उन्हें तो लोग लज्जा और सङ्कोच की मूर्ति ही समझेंगे।

६. ऐसे साधनों के अलावा कि जिनसे उन्हे लज्जित न होना पड़े अन्य साधनों के द्वारा, लायक़ लोग, राज्य पाने से भी इन्कार कर देंगे।

७. देखो, जिन लोगों में लज्जा की सुकोमल भावना है, वे अपने को बेइज्जती से बचाने के के लिए अपनी जान तक दे देंगे और प्राणों पर आ बनने पर भी लज्जा को नहीं त्यागेंगे।

८. अगर कोई आदमी उन बातों में लज्जित नहीं होता कि जिनसे दूसरों को लज्जा आती है तो उसे देख कर नेकी को भी शरमाना पड़ेगा।

९. कुलाचार को भूल जाने से मनुष्य केवल अपने कुल से ही भ्रष्ट हो जाता है लेकिन जब वह लज्जा को भूल कर बेशर्म हो जाता है, तब सब तरह की नेकियाँ उसे छोड़ देती है।

१०. जिन लोगों की आँख का पानी मर गया है, वे मुर्दा हैं; डोरी के द्वारा चलने वाली कठ-पुतलियों की तरह उनमें भी सिर्फ नुमायशी जिन्दगी होती है।

८
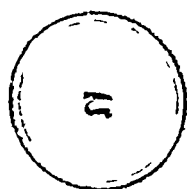
कुलोन्नति

१. मनुष्य की यह प्रतिज्ञा कि अपने हाथों से मेहनत करने में मैं कभी न थकूँगा, उसके परिवार की उन्नति करने में जितनी सहायक होती है, उतनी और कोई चीज़ नहीं हो सकती।

२. मर्दाना मशक्कत और सही व सालिम अक्ल—इन दोनों की परिपक्व पूर्णता ही परिवार को ऊँचा उठाती है।

३. जब कोई मनुष्य यह कहकर काम करने पर उतारू होता है कि मैं अपने कुल की उन्नति

करेगा तो खुद देवता लोग अपनी-अपनी कमर कस कर उसके आगे आगे चलते हैं।

४. देखो, जो लोग अपने खानदान को ऊँचा बनाने में कुछ उठा नहीं रखते, वे इसके लिए यदि कोई सुविस्तृत युक्ति न भी निकालें तब भी उन के हाथ से किए हुये काम में बरक़त होगी।

५. देखो; जो आदमी बिना किसी किस्म के अनाचार के अपने कुल को उन्नत बनाता है; सारी दुनिया उसको अपना दोस्त समझेगी।

६. सच्ची मर्दानगी तो इसी में है कि मनुष्य अपने वंश को, जिस में उसने जन्म लिया है, उच्च अवस्था में लाये।

७. जिस तरह युद्ध-क्षेत्र में आक्रमण का प्रकोप दिलेर आदमी के सर पर पड़ता है, ठीक इसी तरह परिवार के पालन-पोषण का भार उन्हीं कन्धों पर पड़ता है कि जो उसके बोझ को सम्हाल सकते हैं।

८. जो लोग अपने कुल की उन्नति करना चाहते हैं; उनके लिए कोई मौसम, बे मौसम नहीं है;

लेकिन अगर वे लापरवाही से काम लेंगे और अपनी झूठी शान पर अड़े रहेंगे तो उनके कुटुम्ब को नीचा देखना पड़ेगा।

९. क्या सचमुच उस आदमी का शरीर कि जो अपने परिवार को हर तरह की बला से महफूज रखना चाहता है, महज मेहनत और मुसीबत के लिए ही बना है? ❀

१०. देखो, जिस घर मे कोई नेक आदमी उसे सम्हालने वाला नहीं है, आपत्तियाँ उसकी जड़ को काट डालेंगी और वह गिर कर जमीन में मिट जायगा।

❀ ऐसे आदमी पर तरह-तरह की आपत्तियाँ आती हैं और वह उन्हे प्रसन्नता-पूर्वक झेलता है।
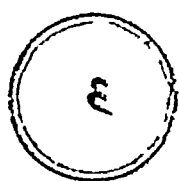
खेती

१. आदमी जहाँ चाहे, घूमे, मगर आखिरकार अपने भोजन के लिए उन्हें हल का सहारा लेना ही पड़ेगा; इसलिये हर तरह की सख्ती होने पर भी कृषि सर्वोत्तम उद्यम है।

२. (किसान लोग समाज के लिये धुरी के समान हैं क्योंकि जोतने-खोदने की शक्ति न होने के कारण जो लोग दूसरे काम करने लगते हैं, उन को रोजी देने वाले वे ही लोग हैं।)

३. (जो लोग हल के सहारे जीते हैं, वास्तव में वे

ही जीते हैं; और सब लोग तो दूसरों की कमाई हुई रोटी खाते हैं।)

४. देखो, जिन लोगों के खेत लहलहाती हुई शस्य की श्यामल छाया के नीचे सोया करते हैं, वे दूसरे राजाओं के छत्रों को अपने राजा के राज-छत्र के सामने झुकता हुआ देखेंगे।

५. देखो, जो लोग खेती कर के रोजी कमाते हैं, वे सिर्फ़ यही नहीं कि खुद कभी भीख न माँगेंगे, बल्कि वे दूसरे लोगों को, कि जो भीख माँगते हैं, बग़ैर कभी इन्कार किये, दान भी दे सकेंगे।

६. किसान आदमी अगर हाथ पर हाथ रख कर चुपचाप बैठा रहे तो उन लोगों को भी कष्ट हुए बिना न रहेगा कि जिन्होंने समस्त वासनाओं का परित्याग कर दिया है।

७. अगर तुम अपने खेत की ज़मीन को इतना सुखाओ कि एक सेर मिट्टी सूख कर चौथाई औंस रह जाय तो एक मुट्ठी भर खाद की भी

ज़रूरत न होगी और फ़सल की पैदावार खूब होगी।

८. जोतने की बनिस्बत खाद डालने से अधिक फ़ायदा होता है और जब नराई हो जाती है तो आबपाशी की अपेक्षा खेत की रखवाली अधिक लाभदायक होती है।*

९. अगर कोई भला आदमी खेत देखने नहीं जाता है और अपने घर पर ही बैठा रहता है तो नेक बीबी की तरह उसकी ज़मीन भी उससे खफ़ा हो जायगी।

१०. वह सुन्दरी कि जिसे लोग धरिणी बोलते हैं, अपने मन ही मन हँसा करती है जब कि वह किसी काहिल को यह कह रोते हुए देखती है—हाय, मेरे पास खाने को कुछ भी नहीं है।

* इसके अर्थ ये हैं कि जोतना, खाद देना, नराना, सींचना और रखाना—ये पाँचों ही बातें अत्यन्त आवश्यक हैं
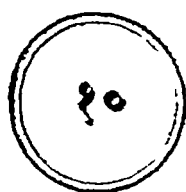
मुफ़लिसी

१. क्या तुम यह जानना चाहते हो कि कङ्गाली से बढ़ कर दु:खदायी चीज़ और क्या है ? तो सुनो, कङ्गाली ही कङ्गाली से बढ़ कर दुःख दायी है ।

२. कम्बख्त मुफलिसी इस जन्म के सुखों को तो दुश्मन है ही, मगर साथ ही साथ दूसरे जन्म के सुखोपभोग को भी घातक है ।

३. ललचाती हुई कंगाली खान्दानी शान और ज़ुबान की भी नफासत तक की हत्या कर डालती है ।

४. जरूरत ऊँचे कुल के आदमियों तक की आन छुड़ा कर उन्हें अत्यन्त निकृष्ट और हीन दासता की भाषा बोलने पर मजबूर करती है।

५. उस एक अभिशाप के नीचे कि जिसे लोग दरिद्रता कहते हैं, हजार तरह की आपत्तियें और बलायें छिपी हुई हैं।

६. गरीब आदमी के शब्दों की कोई क़द्र कीमत नहीं होता, चाहे वह कमाल उस्तादी और अचूक ज्ञान के साथ अगाध सत्य की ही विवेचना क्यों न करे।

७. एक तो कंगाल हो और फिर धर्म से खाली— ऐसे अभागे मरदूद से तो खुद उसकी माँ का दिल फिर जायगा कि जिसने उसे नौ महीने पेट में रक्खा।

८. क्या नादारी आज भी मेरा साथ न छोड़ेगी? कल ही तो उसने मुझे अधमरा कर डाला था*

९. /जलते हुए शोलों के बीच में सो जाना भले

---

* यह किसी दीन-दुखिया के दुःखार्त शब्द हैं।

ही सम्भव हो, मगर ग़रीबी की हालत में आँख का झपकना भी असम्भव है।

१०/ † ग़रीब लोग जो अपने जीवन का उत्सर्ग नहीं कर देते हैं तो इससे और कुछ नहीं, सिर्फ़ दूसरों के नमक और चावलों के पानी ‡ की मृत्यु ही होती है।

---

† इस पद के अर्थ के विषय में मत भेद हैं। कुछ टीकाकार कहते हैं कि कंगाल आदमी को संसार त्याग देना चाहिए और दूसरों का मत है, उन्हें प्राण त्याग देना चाहिए। मूल में "त्त्वरवामपि" शब्द है, जिसके अर्थ मृत्यु और त्याग दोनों होते हैं। भावार्थ यह है कि ग़रीब लोगों का जीवन नितान्त निःसार और व्यर्थ है। वह जो कुछ खाते-पीते हैं वह वृथा नष्ट हो जाता है।

‡ मद्रास प्रान्त में यह प्रथा है कि रात में लोग भात को पानी में रख देते हैं। सुबह को उस ठंडे भात और पानी को नमक के साथ खाते हैं। उनका कहना है—यह बड़ा गुणकारी है।

भीख माँगने की भीति

१. जो आदमी भीख नहीं माँगता, वह भीख माँगने वाले से करोड़ गुना बेहतर है, फिर वह माँगने वाला चाहे ऐसे ही आदमियों से क्यों न माँगे कि जो बड़े शौक और प्रेम से दान देते हैं।

२. जिसने इस दुनिया को पैदा किया है, अगर उसने यह निश्चय किया था कि मनुष्य भीख माँग कर भी जीवन-निर्वाह करे तो वह दुनिया भर में मारा-मारा फिरे और नष्ट हो जाये।

३. (उस निर्लज्जता से बढ़ कर निर्लज्जता की बात

और कोई नहीं है कि जो यह कहती है कि मैं माँग २ कर अपनी दरिद्रता का अन्त कर डालूँगी।

४. बलिहारी है उस मान की कि, जो नितान्त कंगाली की हालत में भी किसी के सामने हाथ फैलाने की रवादार नहीं होती। अखिल विश्व उसके रहने के लिए बहुत ही छोटा और नाकाफी है।

५. जो खाना अपने हाथों से मेहनत करके कमाया जाता है, वह पानी की तरह पतला हो, तब भी उससे बढ़ कर मजेदार और कोई चीज नहीं हो सकती।

६. तुम चाहे गाय के लिए पानी ही माँगो, फिर भी जिह्वा के लिए याचना-सूचक शब्दों को उच्चारण करने से बढ़ कर अपमान-जनक बात और कोई नहीं।

७. जो लोग माँगते हैं, उन सब से बस मैं एक भिक्षा माँगता हूँ—अगर तुमको मांगना ही है

तो उन लोगों से न माँगो कि जो हीला-हवाला करते हैं।

८. याचना का बदनसीब जहाज उसी समय टूट कर टुकड़े-टुकड़े हो जायगा कि जिस दम वह हीलासाजी की चट्टान से टकरायेगा।

९. भिखारी के भाग्य का खयाल करके ही दिल काँप उठता है मगर जब वह उन झिड़कियों पर गौर करता है कि भिखारी को सहनी पड़ती हैं, तब तो बस वह मर ही जाता है।

१०. मना करने वाले की जान उस वक्त कहाँ जाकर छिप जाती है कि जब वह "नहीं" कहता है? भिखारी की जान तो झिड़की की आवाज सुनते ही तन से निकल जाती है।*

---

* इस विषय पर रहीम का दोहा है—
रहिमन वे नर मर चुके, जे कहुँ माँगन जाहिं।
उनते पहिले वे मुए, जिन मुख निकसत नाहिं॥

भ्रष्ट जीवन
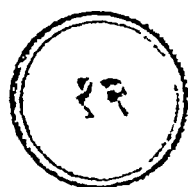
१. ये भ्रष्ट और पतित जीव मनुष्यों से कितने मिलते-जुलते हैं, हमने ऐसा पूर्ण सादृश्य कभी नहीं देखा।*

२. (शुद्ध अन्तःकरण वाले लोगों से यह हेय जीव कहीं अधिक सुखी हैं क्योंकि उन्हें अन्तरात्मा की चुटकियों की वेदना नहीं सहनी पड़ती।)

* कवि इन भ्रष्ट लोगों को मनुष्य ही नहीं समझता, इसीलिए इतना सादृश्य देख कर उसे आश्चर्य होता है।

३. मर्त्यलोक में रहने वाले नीच लोग भी देवताओं
के समान हैं, क्योंकि वे भी सिर्फ अपनी ही
मर्जी के पाबन्द होते हैं।

४. जब कोई दुष्ट मनुष्य ऐसे आदमी से मिलता
है जो दुष्टता में उससे कम है तो वह अपनी
बढ़ी हुई बदकारदारियों का बड़े फख्र के साथ
जिक्र करता है।

५. दुष्ट लोग केवल भय के मारे ही सन्मार्ग पर
चलते हैं और या फिर इसलिए कि ऐसा करने
से उन्हें कुछ लाभ की आशा होगी।

६. नीच लोग तो ढिंढोरे वाले ढोल की तरह होते
हैं, क्योंकि उनको जो राज की बातें बताई
जाती हैं, उनको दूसरे लोगों पर जाहिर किये
बिना, उन्हें चैन ही नहीं पड़ता।

७. नीच प्रकृति के आदमी उन लोगों के सिवा कि
जो घूँसा मार कर उनका जबड़ा तोड़ सकते हैं,
और किसी के आगे भोजन से सने हुए हाथ
झटक देने में भी आना-कानी करेंगे।

लायक़ लोगों के लिए तो सिर्फ एक शब्द ही

काफ़ी है, मगर नीच लोग गन्ने की तरह खूब कुटने-पिटने पर ही देने पर राज़ी होते हैं।

९. दुष्ट मनुष्य ने अपने पड़ोसी को ज़रा खुशहाल और खाते-पीते देखा नहीं कि बस वह फ़ौरन ही उसके चाल-चलन में दोष निकालने लगता है।

१०. दुष्ट मनुष्य पर जब कोई आपत्ति आती है तो बस उसके लिए एक ही मार्ग खुला होता है और वह यह कि जितनी जल्द मुमकिन हो, वह अपने को बेच डाले।

संपादक —
उपाध्याय विनयसागर